

संवित्र  
संदिग्ध  
भक्त चरित माला

# भूमुख

११ वाँ  
पुष्प

# श्रीराम

१.५.७



सम्पादक

हनुमान प्रसाद पोद्धार



सर्वत्र  
संक्षिप्त  
भक्त वरित माला

भूषण

११ वाँ  
पुण्य

# श्री दल



सम्पादक

हनुमान प्रसाद योद्धा

मुद्रक तथा प्रकाशक  
मोतीलाल जालान  
गीताप्रेस, गोरखपुर

मं०	१९९६	से	२०१५	तक	४३,२५०
मं०	२०१९	मानवी संस्करण			५,०००
मं०	२०२२	आठवीं संस्करण			५,०००
कुल					५३,२५०

मूल्य ३६० न०.पै० ( इकतीस नये पैसे )

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

श्रीहरि:

## निवेदन

यह भक्त-चरित-मालाका ग्यारहवाँ पुण्य है। इसमें पाँच भक्तोंकी कथाएँ हैं, प्रथम दो भक्त बड़े ही भावुक और प्रेमी हैं। शेष तीन भक्तोंका जीवन कण्ठसे भरा हुआ परन्तु अत्यन्त उपदेशपूर्ण और श्रीभगवान्‌की कृपाका प्रत्यक्ष निर्दर्शक है। इनमें भक्त श्रीव्यासदासजी और मामा श्रीप्रयागदासजीकी कथाएँ श्रीनवलकिशोरदासजी विद्यार्थी और श्रीविन्दुजी ब्रह्मचारी महोदयकी लिखी हैं जो सर्वथा विश्वसनीय हैं और शेष तीन कथाओंमें शङ्कर पण्डितकी एक मराठी ग्रन्थसे और भक्त प्रतापराय तथा गिरवरकी हस्तलिखित बंगला ग्रन्थसे ली गयी हैं। कथाएँ बहुत ही उत्तम हैं। पाठकोंको इनसे लाभ उठाना चाहिये।

गीताप्रेस,  
गोरखपुर }

हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीहरि:

## विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—भक्त श्रीब्यासदासजी ( लेखक—श्रीनवल्किशोरदासजी विद्यार्थी )	५
२—मामा श्रीप्रयागदासजी ( लेखक—श्रीविन्दुजी ब्रह्मचारी )	३६
३—भक्त शङ्कर पण्डित	५५
४—भक्त प्रतापराय	६९
५—भक्त गिरवर	८६



# भक्त-गोरमा

भक्त शहूर पण्डित



प्राप्ति करने की विधि नियम विभिन्न विषयों के लिए विभिन्न होती है।  
भारतीय धर्मालंकार चलन की विधि।

॥ श्रीहरिः ॥

## भक्त-सौरभ

### भक्त श्रीव्यासदासजी

ओड़छा (बुन्देलखण्ड) के रहनेवाले सनात्य ब्राह्मणकुलमें पण्डित सुमोखन शर्मा शुक्ल राजपुरोहित एक माननीय पुरुष थे। उनके वचनको ओड़छानरेश और उनकी सब प्रजा मानती थी। उनकी धर्मपत्नीके गर्भसे विक्रम-संत्रत् १५६७ मार्गशीर्ष कृष्णा पञ्चमीके दिन एक सुपुत्ररत्न उत्पन्न हुआ, जिसका शुभ नाम हरिराम रखवा गया। यह लड़कपनसे ही बड़ा बुद्धिमान् माल्हम होता था; सबको प्रिय लगता था। पं० सुमोखन शमनि अपने इकलौते प्रिय पुत्रको भलीमाँति विद्याभ्यास कराकर सब प्रकारसे सुयोग्य परम विद्वान् बना दिया और जैसे उपनयनसंस्कार किया वैसे ही यथा-समय बड़े समारोहसे एक सुशीला कन्याके साथ उपका विचाह भी कर दिया।

अपने पूर्य पिताकी सुकीर्तिको बढ़ानेवाले पण्डित हरिराम शर्माकी विद्याका प्रकाश चमक उठा और उनकी ख्याति दिन-दूनी फैलने लगी। बड़े-बड़े विद्वान् शास्त्रोंका मर्म समझनेके

लिये इनके पास आने लगे । उन सबको आप शास्त्रोंकी सुलिलित व्याख्याके द्वारा सन्देहरहित करके लौगने लगे ।

अरथ पुरान सकल समझावैं । संसै कोऊ रहन न पावैं ॥

इस प्रकार थोड़े दिनोंमें ही इनकी बड़ी प्रसिद्धि हो गयी । जिस समय इनके पूज्य पिताजी सर्वगतासी हुए और उनकी जगह राजपुरोहितका कार्य आप करने लगे, उस समय ओडिशानरेश महाराजा मधुकरशाहजी थे । वे इनकी विद्वत्तापर मुख्य थे ।

पण्डित श्रीहरिम शर्मा शास्त्रोंके आधारसे धर्म-कर्मके प्रत्येक विषयमें वाद-विवाद करके अपना मत विशेष मान्य करानंमें बड़े निपुण थे । जहाँ कहीं किसी विद्वान्‌का नाम सुन पाते तुरंत उसके पास वहीं शास्त्रार्थके लिये जा पहुँचते । इनके साथ राज्यकी ओरसे अङ्गरक्षक रहते थे । इनके शास्त्रार्थकी व्याप्ति भी दूर-दूरतक खूब फैल चुकी थी । एक समय आप काशी पधारे । प्रतिष्ठित राजपुरोहित और एक प्रखर विद्वान्‌ इनसे मिलनेके लिये आये । शास्त्रचर्चा हुई—उसमें इनकी उक्तष्टता रही । पश्चात् इन्होंने श्रावण मासमें वहाँके प्रसिद्ध विद्वानोंकी सम्मति लेकर वेदोक्त बृहद्विधि-विद्वानसे सर्वप्रकार साझोगङ्ग श्रीकाशी-विश्वनाथका अभिषेक कराया । उसी रात्रिको राजपुरोहितजीने एक स्वप्न देखा । शुक्लाम्बरधारी साधुके वेषमें सदाशिव इनके पास आकर बोले—‘मैं बहुत कालसे इस काशीमें निवास करता हूँ । आपकी विद्याकी बड़ाई सुनकर आया हूँ, मेरी एक छोटी-सी शङ्काका समाधान आप कर

शीजिये ।' वह शङ्का यह है कि—‘विद्याकी पूर्णता कब है ?’ उत्तरमें इन राजपुरोहितजीने कहा—‘भगवन् ! सत्यासत्यको यथार्थ जानकर प्राप्त करनेयोग्य पदार्थको प्राप्त किया जाय, तब है ।’ यह उत्तर सुनकर भोले बाबा बोले—‘अहो पण्डितराज ! आप जितना दूसरोंको समझते हैं उतना स्वतः क्यों नहीं समझ रहे हैं ? आपकी विद्यामें यह एक बड़ी भारी त्रुटि है । इस त्रुटिको दूर करनेके लिये आपको प्रयत्न करना चाहिये । जब प्राप्त करनेयोग्य पदार्थको प्राप्त करनेमें ही विद्याकी पूर्णता है, तब भला वाद-विवादसे वह पूर्णता कैसे प्राप्त होगी ? वह पदार्थ एकमात्र भक्तिसे लभ्य है और विद्याकी पूर्णता भी भगवद्गुरुकिमें ही है । भक्तिके बिना इस विद्याकी पूर्णता नहीं है; विद्याकी पूर्णताके लिये भगवद्गुरु करनी चाहिये ।’

पण्डितजी जब जागे तो विद्याका नशा उतर चुका था, विवादकी आलमा मिट चुकी थी । जीवनमें एक नया अध्याय खुल रहा था ।

अतः अब, ‘वही पढ़ विद्या जामें भक्ति कौ प्रबोध होय ।’ इस स्वप्नने इनके जीवनको पलट दिया, अब तो ‘वही पढ़ विद्या जामें भक्ति कौ प्रबोध होय’—यह सूत्र इनके जीवनका प्रधान कर्तव्य बन गया । जिसकी विद्वत्ताके आगे बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् परास्त हो चुके थे, वही आज ‘जिसमें भक्तिका प्रबोध होय’ ऐसी विद्या पढ़नेकी चिन्तामें डूब रहे हैं । यह कुछ निराली ही पहेली है ।

पं० श्रीहरिम शर्मा व्यास जीतकर भी अपनेको हारा-सा अनुभव कर रहे थे । वे अपने वाद-विवादोंके साधन बड़े-बड़े पोथोंको बाँधकर

काशीसे सीधे अपने मुकाम ओड़छाको लौट आये, किन्तु वह रठन चित्तमें चौगुनी बलवती हो चली। अब तो दृष्टि ही पलट चुकी थी, इसलिये बाल-बच्चे, धन-धाम, काम-वाम, मान-बड़ाई सभी बातें इन्हें भार-सी—व्यर्थ-सी मालूम होने लगीं।

ऊँचौ मन, गुरु करनौ विचारै । ऐसो करौं जु पार उतारै ॥  
 कबहूँ कै रैदास सुहावै । कबहूँ मत कबीर को भावै ॥  
 कबहूँ पीपा पर मत राखै । कबहूँ श्रीजयदेवहि भाखै ॥  
 कबहूँ नामदेव सुधि आवै । कबहूँ रंकहि बंकहि गावै ॥

संतोंकी शरणमें जानेके लिये अब इनका हृदय ललक रहा था और एक-एक कर सबकी स्मृति हो रही थी। किन्तु ठीक किसी एक निश्चयर अभी नहीं पहुँचे। इनके सौभाग्य-संयोगवश श्रीराधावल्लभ (आद्यब्रह्म) सम्प्रदायाचार्य वंशी-अवतार अनन्त श्रील श्रीहितहरिविंशचन्द्र महाप्रभुजीके शिष्य संत श्रीनवलदासजी महाराज भ्रमण करते-विचरते ओड़छा जा निकले। इनको देखकर पण्डितराज अति प्रसन्न हुर, मिले और उनको आदर-पूर्वक कुछ दिन अपने पास रखकर इन्होंने सत्सङ्ग किया। सत्सङ्ग-से श्रीराधाकृष्ण युगलखरूपकी अभिन्नता और नित्यलीलाका रहस्य मिला। रहस्यको प्रकट करनेवाले श्रीहितप्रभुजीकी उपस्थिति सुनी।

‘भगवत्’ दुख विसरयो सुनत, नवल बनन सुख सीर।  
 संसै सूल, रु भ्रम नस्यौ, निरमल भयौ सरीर ॥

श्रीहितप्रभुजीको गुरु करनेकी उल्कण्ठा देखकर महात्मा श्रीनवलदासजी इनसे बोले, वृन्दावन चलकर दर्शन कीजिये और उन्हींसे दीक्षा

लीजिये । अब तो पण्डितजीको गृहस्थाश्रम एक पूरा जंजाल दिखायी देने लगा और सब छोड़-छाड़कर साधु बननेकी धुन सवार हो गयी । तुरंत—  
 ‘व्यास’ अवास कुदुंब विहार्द । बृंदावन गवने हरथार्द ॥  
 मार्गमें तरह-तरहके मनोरथ करते जाते थे ।

हरि मिलिहैं मोहि बृंदावन में ।

साधु बचन मैं साँचे जाने, फूल भई मेरे मन में ॥  
 विहरत संग देखि अलिगनजुत निविड़ निकुंजभवन में ।  
 नैन सिराय पाय गहिबी तब, धीरज रहिहै कवन में ॥

अब न और कछु करनै, रहनै है बृंदावन ।

होनौ होइ सो होइ किनि, दिन-दिन आयु घटनि झूँठे तन ॥  
 मिलिहैं हित ललितादिक दासी रास मैं गावत सुनि मन ।  
 जमुना पुलिन कुंज घन बीथिनि विहरत् गौर स्याम घन ॥  
 कहं सुत संपति औ गृह दारा, काटहु हरि माया के फंदन ।  
 व्यास आस लाडहु सबही की कृपा करी राधा नँदनंदन ॥

इस प्रकार मन-ही-मन मनोरथ करते हुए वि० सं० १३००  
 के लगभग कार्तिकमासमें श्रीबृन्दावनधाममें महात्माजीके साथ पहुँचे । यमुनाजीमें स्नान करके श्रीजीके मन्दिरमें आये । उस समय श्रीहितप्रसुजी भगवान् श्रीराधावल्लभजीको राजभोग धरानेके निमित्त रसोई बनानेका कैङ्कर्य कर रहे थे । उसी समय पण्डितजीने उनसे बातें करनी चाही । आग्रह देख श्रीमदाचार्यने चूल्हेपर टोकनी रखी थी, उसे उतारकर नीचे रख दी और जलसे अग्नि-

को शान्त कर दिया । यह देख तुरंत पण्डितजी बोल उठे—रसोई  
और चचा—दोनों काम साथ ही हो सकते थे । कारण कि—  
करिवौ धरिवौ कर कौ धमे । कहिवौ सुनिवौ मुख श्रुति मर्म ॥

(अनन्य रसिकमाल)

इसके उत्तरमें श्रीमहाप्रभुजीने सारभरी ब्रात इस प्रकार  
कही—

यह जु एक मन बहुत ठोर करि कहि कौने सच्चु पायौ ।  
जहाँ तहाँ विपनि जार जुबती लौ प्रगट पिंगला गायौ ॥  
द्वे तुरंग पर जोर चढ़त हठि परत कौन पै धायौ ।  
कहि धौं कौन अंक पर राखै, जो गनिका सुत जायौ ॥  
(जैथी)हित हरिबंस प्रपञ्च वंच सब काल व्याल कौ खायौ ।  
यह जिय जानि स्याम स्यामा पद कमल संगि सिर नायौ ॥

इस हितसिद्धान्तको श्रवण करते ही पण्डितजीको विशेष  
उपदेश यह हुआ कि, यह समस्त प्रपञ्च कालरूप सर्पसे म्रसित  
है; इसका अन्त अवश्य है । रेसा हृदयमें विचारकर जिसने  
श्रीश्यामाश्याम-पादपद्मानुरागी जनोंको सिर नवाया, वह काल-व्याल-  
के गालसे बचा अर्थात् वही जीवन्मुक्त हुआ । यह उपदेश  
पण्डितजीको बहुत रुचा, ये दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थनापूर्वक  
बोलि—‘अब कृष्ण करके आप मुझे दीक्षा दीजिये और अपना  
किङ्गर कीजिये ।’

थ्रद्धा लखि ‘निज मंत्र’ सुनायौ । भयौ व्यास के मन कौ भायौ ॥

(अनन्य रसिकमाल)

अब तो यथाविधि दीक्षा प्राप्त करके ओड़छाके राजपुरोहित  
पण्डित श्रीहरिराम शर्मा श्रीजीकी शरण पाकर श्रीव्यासदास

बन चुके; एक विरक्त वैष्णवके रूपमें दिखायी देने लगे\* और वृन्दावनधाममें सेवाकुल्जके समीप एक मन्दिर निर्माण कराकर हित-पद्धतिसे सेव्य युगलकिशोरखरूप श्रीराधाकृष्ण पवराकर अत्यन्त लाड़ लड़ाने लगे। थोड़े ही दिनोंमें वृन्दावनके कोने-कोनेमें 'व्यासजीकी जोरी'के नामसे प्रभु कहाने लगे।

रहनि विलास महोत्सव पागे । श्रीगुरु साधुनि सेवन लागे ॥

मंत श्रीनवलदासजीका उत्तम आभार मानकर, दीक्षाके तत्त्वको विचार करके और प्रेमा-भक्तिके महत्त्वको समझकर आप कहने लगे—

हाँ वलिहारी संत की, कियौ वहुत उपकार ।  
हरि सो धन हिरदै धरवौ, छुटा दियौ संसार ॥

और—

स्याम निवेरवौ सब सौं झगरौ ।

निज दासति के दास करे हम, पायो नाम अचगरौ ॥  
देवी देवा भूत पितर सबही कौ फारवौ कगरौ ।  
पावनगुन गावत तन सुधरवौ, तव रसिकन पथ डगरौ ॥  
मिटि गइ विता मेरे मन की, छूटि गयौ भ्रम सगरौ ।  
चार पदारथहू ते न्यारौ 'व्यास' भगति सुख अगरौ ॥

\*निजगत्त्रोपदेशेन माया दूरमुपागता । कृपया गुरुदेवस्य द्वितीयं जन्म कथ्यते ॥

( नारदपाञ्चरात्र )

यह 'मन्त्र' हितव्यामिनी श्रीश्रीराधिकाजीने कृपा करके विक्रम-मंत्र, १५४१, चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, सोमवारके दिन श्रीहितहरिविंशत्चन्द्र महाप्रभुजीको प्रदान किया था। इसी मन्त्रकी दीक्षाद्वारा जो शिष्य-प्रशिष्य हुए, उनके द्वारा हितसिद्धान्तका विशेष प्रचार हुआ है।

यहाँतक तो इनके शिष्य होनेके सम्बन्धमें संक्षेपमें लिखा गया । अब आगे इनके सात्त्विक जीवन, जगत्में संतजनोंको क्या-क्या बाधाएँ भोगनी पड़ती हैं और उनके बीचमें विरक्त-वैष्णवका जीवन किस कस्तौटीपर पहुँचता है एवं साधुकी सहनशक्तिका प्रभाव सांसारिक जीवनके ऊपर कैसा पड़ता है, इन सब दृष्टियोंसे इनके जीवनकी कुछ खास-खास घटनाओंका उल्लेख यहाँ प्रेसी पाठक महानुभावोंके आनन्दार्थ किया जाता है ।

प्रतिदिनकी भाँति इनके यहाँ आज भी दर्शकोंका जमघट जम रहा था । रासमें युगलखरूपका नृत्य हो रहा था, रंग ढा रहा था, अनुष्म आनन्द बरस रहा था । इसी समय श्रीराधिकाजीके चरणकम्लसे वृंगरू टूटकर पृथक् हो गया । आप वहाँ बैठे थे ही । तुरंत ‘नौगुनौ तोरि नूपुर गुह्यौ महत-मभा-मधि रासके’—आपने अपना यज्ञोपवीत तोड़कर श्रीराधिकाजीके वृंगरूमें गूँथ दिया ! यह देव दर्शकलोग आश्र्यचकित होकर बोल उठे—‘व्यासदासजी ! यह आपने क्या किया ? अरे राम राम ! यज्ञोपवीतको आपने पगमें वाँच दिया !’ आपने तत्काल उत्तर दिया कि ‘बहुत दिनोंसे इमको ढोया था, आज अच्छे मौकेपर इसे बहुत सुन्दर काममें लगा दिया । इससे अच्छा इसका उपयोग और क्या हो सकता है । भगवच्चरणोंकी प्राप्ति ही तो सब धर्मोंका लक्ष्य है । इसीलिये मैंने आज इस शुभावसरमें इस सूत्रको अपने परम इष्ट श्रीकृष्णप्राणाधिका राधिकाजीके चरणोंमें समर्पण कर दिया है, यही तो इस सूत्रका सौभाग्य है ।’ यह उत्तर सुनकर सब भावुक बहुत आनन्दित हुए ।

कुछ वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् इनका पता ओड़छानरेशको मिला। उन्होंने इनको लिखा ले जानेके लिये अपने मन्त्रीको भेजा। मन्त्री बृन्दावन आकर इनसे मिले। महाराजाका लिखा पत्र दिया और सब समाचार कह सुनाये। आप ‘हाँ’, ‘ना’ कुछ भी न बोले। पूरा महीना बीत चला, तब मन्त्रीने कहा, ‘आपको बुलानेके लिये मुझे भेजा गया है; महाराज आपको दिन-रात याद किया करते हैं; आप ओड़छे पधारें। यह सुनकर आप प्रेममरे शब्दोंमें मन्त्रीसे बोले—

कहाँ हौं बृन्दावन तजि जाउँ ।

मोसे नीच पोच कों अनत न हरि बिनु और न ठाउँ ॥

सुख पुंजनि कुंजनि के देखत विषय विषै क्यौं पाउँ ।

एक आगि कौ डाढ़यौ दूजी आगि माँझ न बुझाउँ ॥

एक प्रसन्न न मोपर, निसिदिन छिनि-छिनि सबैकुदाउँ ।

राधा रँवन सरन बिनु अब हौं काके पेट समाउँ ॥

भौंजन छाजन की चिता नहिं, मरबेहू न डराउँ ।

सिर सिंदूर व्यास धारथौ अब, है है स्याम सहाउँ ॥

इस उत्तरसे मन्त्रीने समझ लिया कि ‘अब इनका मन चलनेका नहीं है। और अधिक कहनेमें भी कुछ सार नहीं है।’ अतएव विचारकर उन्होंने एक उपाय रचा। श्रीव्यासदासजी यमुनाजीमें स्मान करने गये थे। पीछेसे समय पाकर मन्त्रीने श्रीहितमहाप्रभुजीसे बहुत कुछ प्रार्थना करके अपना अभिप्राय प्रकट किया। अन्तमें महाप्रभुजी बोले—‘अच्छा, दर्शन करने आवेगा तब व्यासदासको कुछ

कहेंगे ।' इस बातका पता यमुनाजीपर किसी प्रकार श्रीव्यासदासजीको लग गया कि आज आपको ओड़छा जानेके लिये श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा देनेवाले हैं, आप आज्ञाके भयसे वहीं ज्ञाउओंमें छिप रहे; दर्शन करने तक नहीं गये । तीन दिन बीत गये तब श्रीमहाप्रभुजीने इनको हूँढ़नेके लिये अपने शिष्योंको आज्ञा दी । उन्होंने बहुत कुछ खोज की तो यह ज्ञाउओंके आड़े छिपे पड़े मिले । गुरुदेवका बुलावा सुनकर आप उठे और बोले, 'ठहरो ! मैं स्नान कर लूँ, फिर चलूँ ।' यमुनाजीपर आकर बड़ी देरतक स्नान करते रहे, शीघ्र चलनेको कहा गया तो घाटपर कोयला बिसकर मुखपर बहुत-सी कारिख पोत ली और एक गदहा साथमें ले लिया, चले गुरुदेवके दर्शन करने । यह देव रसिकजनोंने इनसे पूछा, आज आपने यह कैसा स्वाँग रचा है ? आपने उत्तर दिया, 'जिनकी शरणमें आकर मैंने श्रीवृन्दावनधामका निवास पाया है और अपने जीवनका लाभ लेता हूँ वही मेरे श्रीगुरुदेव आज मुझे इस वृन्दावनधामको छोड़कर जानेकी आज्ञा करेंगे; तब निश्चय ही मुझे जाना ही पड़ेगा । इसलिये अब श्रीवृन्दावनधामका निवासरूप जो परमपद है इससे उतरकर नरकमें पड़ना ही होगा; श्रीवृन्दावनधामको छोड़कर निकलते समय कारिख मिली-न मिली । इसीसे मैंने पहले ही पोत ली ।' यह बात व्यासदासजीकी प्रतीक्षामें बैठे हुए श्रीआचार्य महाप्रभुजीके कानोंतक पहुँच गयी । सुनकर वे बहुत दुखी हुए, मनमें पछताचा करने लगे, हृदय भर आया । मन्त्री वहीं बैठे थे । उनको आपने तत्काल साफ उत्तर दे दिया कि—'मैं उस बड़भागी व्यासदाससे श्रीवन छोड़कर आपके साथ जानेके सम्बन्धमें एक शब्द भी नहीं कहूँगा ।' अब तो

श्रीव्यासदासजीको खबर मिली और निश्चय हुआ कि ‘मेरे श्रीगुरुदेव मुझे वह बात नहीं कहेंगे।’ तुरंत कारिख घोकर दर्शन करने आये। गद्गद होकर साशङ्क दण्डवत्-प्रणाम किया। श्रीमहाप्रभुजीने इनके निमित्त श्रीमहाप्रसाद धर रखा था, वह पताया। दर्शन करके अपने मुकाममें गये तो मन्त्रीने पुनः बड़े आग्रहसे वही बात चलायी। आपने तुरंत कह दिया अच्छी बात है, कल होने दीजिये। दूसरे दिन आपने कहा ‘अब चलनेकी तैयारी कीजिये। मैं श्रीगुरुदेवके दर्शन कर प्रसाद लेता हूँ।’ मन्त्रीने समझा यह आज भी कहीं जा न छिपें। इसलिये मन्त्री और मन्त्रीके सभी साथी इनके साथ हो लिये। श्रीजीको राजभोग लग चुका था और महाप्रसाद पाने संत पुरुषोंकी पंक्ति बैठी थी। पंक्ति प्रसाद पाकर जब उठी तो नित्य-नियमानुसार श्रीव्यासदासजीने संतोंका जट्ठन लेकर पाया।\* यह देख साथमें आये हुए चतुर मन्त्री इनसे घृणा करने लगे और आपसमें विचार किया कि ‘अब ये राजपुरोहितजी विल्कुल विलट चुके, ब्राह्मण नहीं रहे; अपने वहाँ ले चलेंगे तो यह और सबको भी विलग्यावेंगे। अतएव इनको यहाँ रहने देना ठीक है। महाराजको समझा देंगे।’ इस प्रकार निश्चय करके डेरेपर आये और श्रीव्यासदासजीसे घोले, ‘अब हम सब वापस जाते हैं। आप महाराजको पत्र लिख दीजिये।’ आपने लिखा—

\* प्रेम मगन नहिं गन्यो कछु बरनावरन विचार ।

सबनि मध्य पायौ प्रगट, लै प्रसाद रस सार ॥

—आचार्य श्रीहित ध्रुवदामजी

रसिक अनन्य हमारी जाति ।

कुलदेवी राधा, बरसानौ खेरौ, ब्रजबासिन सौं पाँति ॥  
गोत गुपाल, जनेऊ माला, सिखा सिखंडि हरिमंदिर भाल ।  
हरिगुन नाम बेद धुनि सुनियत, मूँजपखावज, कुस करताल ॥  
साखा जमुना, हरिलीला, पटकर्म, प्रसाद पान धन रास ।  
संवा विधि, निषेध जड संगति, वृत्ति सदा बृंदावन बास ॥  
स्मृति भागवत, कृष्ण नाम संध्या तर्पण गायत्री जाप ।  
बंसी रिषि! जजमान कल्पतरु, 'व्यास' न देत असीस सराप ॥

मन्त्रीने जाकर महाराजा मधुकरशाहको वह पत्र दिया और  
नब समाचार सुनाये । कहा, वे राजपुरोहितजी अब आपके यहाँ  
पुरोहितीका काम करनेके योग्य नहीं रहे, बिलट गये हैं, जो  
किसी वर्ण-धर्ममें नहीं हैं ऐसे साधुओंका जूठन बचा हुआ खा  
लेते हैं और यज्ञोपवीत न जाने कबका तोड़ फेंका है । यह सब  
सुना पर ओड़छानरेश कुछ बोले नहीं ।

परन्तु पुरोहितजीके बिना महाराजाका जी बहुत उदास रहने  
लगा । तब उन्होंने मन-ही-मन विचार किया कि 'पुरोहितजी  
सकलशास्त्रनिष्ठात एक प्रसिद्ध पुरुष हैं । मन्त्रीके साथ नहीं आये,  
पर मेरे जानेसे वे अवश्यमेव आ जावेंगे ।' यह विचार निश्चय कर  
खतः महाराजा श्रीव्यासदासजीको लेने बृन्दावन गये । कर्मचारीने  
आगे आकर खबर दी कि आपके दर्शनार्थ आपके पास महाराजा  
आ रहे हैं । तब ये मन-ही-मन कहने लगे—

मन मेरे तजिये राजा संगति ।

स्यामहि भुलवत दाम काम बस इन बातनि जैहै पति ॥

बिषयनि के उर क्यों आवत हरि, पोच भई तेरी मति ।

सुख कहँ साधन करत अभागे, निसिद्दिन दुख पावत अति ॥

इतनेमें महाराजा आ पहुँचे । पूर्वस्नेहके कारण परस्पर गदगद होकर मिले । शिष्टाचार हो चुकनेके पश्चात् महाराजा बोले ‘आप ओड़छे पथारिये ।’ इन्होंने कहा—

अब मैं श्रीबृंदाबन रस पायौ ।

राधा चरन सरन मन दीनौ, मोहनलाल रिझायौ ॥

सूतो हुतौ बिषय मंदिर में हितगुरु टेरि जगायौ ।

अब तौ ‘व्यास’ बिहार बिलोकत सुक नारद मुनि गायौ ॥

‘भले, एक दिन रहकर वापस चले आइये; पर एक बार आप मेरे साथ ओड़छे अवश्य चलिये ।’ महाराजाने बड़े आग्रहसे ऐसा कहा, तब आपने कह दिया ‘अच्छा विचार करेंगे ।’ महाराजा अपने डेरेपर गये । ये प्रभुसे प्रार्थना करने लगे—

मेरे तन सौं बृंदाबन सौं हरि जिनि होइ बिछोह ।

अह यह साधु संग जिनि छूटौ, ब्रजबासिन सौं छोह ॥

जब-जब महाराजा इनसे मिलें, तभी चलनेकी चर्चा किया करें; परंतु ये उनको ‘आज अमुक छलबँगलाके दर्शन करो; आज मेला देख लो; आज श्रीबृंदाबनधामकी चलिये परिक्रमा तो कर ही लीजिये, फिर न जाने कब आना हो । क्या पता, आये न भी आये । अतः जो अवसर है इसका लाभ ले लेना चाहिये । अच्छा तो अब दो रात्रि और निवास कर लीजिये, पीछे देखा जायगा ।’ तदनन्तर श्रावणके झूलोंका बहाना करने लगे । इस प्रकार नित्य बहाने करके समय बिताने लगे । ऐसे बहानोंमें हेतु इनका यह व्रत था—

जीवत मरत वृद्दावन सरनैं ।

सुनहु सचित है श्रीराधामोहन यह बिनती मन धरनैं ॥

यहै परम पुरुषारथ मेरौ, और कछू नहिं करनैं ।

स्याम भरोसें तेरे ब्रत के नहीं 'ब्यास' कौं टरनैं ॥\*

महाराजाके आग्रहसे श्रीवनवासियोंने कुटुम्बी जनोंसे मिल आनेके बहाने, साथमें जानेके लिये कहा । आपने उसी समय उत्तर दिया—अरे वनवासी भाइयो ! मिलने किससे जाना, जब कि—

( श्री ) वृद्दावन के रुख हमारे मात पिता सुत बंधु ।

गुरु गोविंद साधु गति मति सुख फल फूलनि कौं गंधु ॥

इनहिं पीठि दै अनत दीठि करै, सो अंधनि मैं अंधु ।

'ब्यास' इनहिं छोड़ै औ छुड़ावै, याको परै निकंधु ॥

और—

वृद्दावन तजि जे सुख चाहत, ते सब रान्छुस प्रेत ।

ब्यासदास के उर मैं बैठ्यौ मोहन कहि कहि देत ॥

इनके परमदेवता संत महापुरुषोंने भी कहा 'श्रीब्यासदासजी ! आप संतसेवी महात्मा हैं । यद्यपि जो उचित प्रतीत होगा आप वही करेंगे तथापि हमारी सबकी सम्मति तो यह है कि जब राजा-का इतना अधिक आग्रह है तो एक बार आप ओङ्छा हो आइये, इसमें महाराजाके मनको आनन्द होगा और आपको संतसेवाके

\* जो कोउ कहै, जा, ब्रत छोड़ी ।

ताहि कहैं मति तोरि निगोड़ी ॥

( स्व० म० रघुराजसिंहजी )

लिये अर्थ प्राप्त हो जायगा । अतः एक दिनके लिये वहाँ जानेमें क्या हानि है ।’ इसके उत्तरमें महात्माजीने कहा—‘प्रभो ! आपकी आज्ञा तो उचित ही है; किन्तु हमारे अनन्य परमधर्मकी रीति इससे नितान्त विपरीत है । वह यह है कि—

जाकी उपासना, ताहीं की बासना,  
ताहीं कौं नाम रूप गुन गाइयै ।  
यहै अनन्य परमधर्म परिपाटी,  
बृंदावन बसि अनत न जाइयै ॥  
सोइ व्यभिचारी, आन कहै, आन करै,  
ताको मुख देखे दारुन दुख पाइयै ।  
'व्यास' होइ उपहास आस किये,  
आस अछत कित दास कहाइयै ॥

और—

‘व्यास’ आस जौ लगि हिये जग गुरु जोगी दास ।  
आस विहौंनो जगत में जोगी गुरु जग दास ॥

उपस्थित सब संत परम्पर्मी अनन्यरसिककी प्रशंसा करने और धन्य-धन्य कहने लगे । खतः ओड़ियानरेश बोले, ‘आपको हमारे साथ अवश्य चलना ही पड़ेगा; बिना लिये हम न जायँगे । अब चलनेको तैयार हो जाइये ।’ तब इन महात्माजीने अपना मनोगत भाव स्पष्ट कह सुनाया कि—

सुधारथौ हरि मेरौ परलोक ।  
श्रीबृंदावन में कीन्हौं दीन्हौं हरि अपनौ निज अनोक ॥  
माता कौं सो हेत कियौ हरि जानि आपनौ तोक ।  
चरन धूरि मेरे सिर मेली और सबनि दै रोक ॥

ते नर राच्छस कूकर गदहा ऊँट बृषभ गज बोक ।

‘ब्यास’ जु वृद्धावन तजि भटकत, ता सिर पनही ठोक ॥

सुनते ही महाराजाने अपने कर्मचारियोंको आज्ञा दी कि अब इनको पालकीमें धरकर ले चलो । सभी भृत्य पकड़नेको तैयार हो गये । तब ये बोले—अच्छा तो अब मेरे सब भाई-बन्धुओंसे तो मिल लेने दो ! ऐसा कहकर आप एक कदम्बको बाँक भरकर बड़ी देरतक रोये । बल करके जैसे-तैसे छुड़ाया गया तो चटसे दूसरे कदम्बको लिपट पड़े; दूसरेसे छुड़ानेपर तीसरेसे चिपट गये । यह देखकर राजकर्मचारियोंने कहा—बस, मिल लिये, अब तो छोड़ो ! आप कहने लगे अभी तो बहुत बाकी हैं; मुझे सबसे मिल लेने दो; इस प्रकार ये रोते जायँ और कदम्बोंसे बोलते जायँ—‘आपकी शरणमें मुझे सदा आनन्द रहता है; आप ही तो मेरे माता हो, पिता हो, भाई-बन्धु हो, मित्र हो, मेरी गति हो और परम पुरुषार्थ हो । पर आप मुझपर दया नहीं करते; मैंने आपको कोई कष्ट नहीं दिया, आज मुझे क्यों छोड़ते हो ! अरे रे, आपका वियोग मुझसे कैसे सहन हो सकेगा । आप ही बताओ मुझसे ऐसा कौन-सा आपका अपराध बन गया जिससे आप इतने कुपित हो गये हैं । भले, मेरे दुर्भाग्यवश आप मुझे न चाहो, पर मैं जीते-जी आपको छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा; आपके बिना नहीं जीऊँगा ।’ इस प्रकार रोते, मिलते-करते चार प्रहर दिन बीतनेको आया । यह दशा देख एक वृद्धावनवासिनी बुद्धियाने सरलतासे कहा—‘अरे निष्पूते ! तोकौं लै जाइबेके ताई राजा मथै है तौ तूँ इतनौ हठ घ्यौं करै है, वाके संगमें छानों मानों चलो घ्यौं नाहिं जाय; दुःख क्यों उठावै ? कदम्बनिके

ताईं बावरे ! च्याँ मरौ परै है, ये कहूँ भाजि थोरे ही जायँगे । फिर  
आजइयौ ।' आपने कहा—

व्यास सुरसिकन की रहनि बहुत कठिन है, वीर !  
मन आनंद घटै न छिन, सहै जगत की पीर ॥

महाराजा श्रीमधुकरशाहजी श्रीव्यासदासजीके ऊपर मरे  
पड़ते थे, उनका हृदय टूटा पड़ता था । वे चाहते थे कि किसी प्रकार  
भी ये एक बार ओड़छा चले चलें तो ठीक ! किन्तु उनका वह  
मनोरथ अनेक प्रयत्न करनेपर भी सफल न हुआ । अन्तमें निराश  
होकर ओड़छाधिपति श्रीव्यासदासजीके आगे रो पड़े और लिंगा ले  
जानेके कारण किये गये अपने हठके लिये हाथ जोड़कर इनके  
चरणोंपर अपना मस्तक धरके उन्होंने क्षमा माँगी और कहा,  
'आपने मेरे हठवश बहुत कुछ कष्ट उठाया; जीमें अत्यन्त क्लेश  
भोगा । मेरे अपमानजनक खार्थमय कुवचनोंको भी आदिसे अन्ततक  
आपने सहा; मेरे दुराग्रहकी हद हो गयी; परन्तु आपने अपने मुखसे  
मुझे एक भी कठोर शब्द न कहा और न मेरे प्रति आपने अपने  
स्नेहको ही तोड़ा तथा न अपना दृढ़त्रत ही छोड़ा ।' संतजीने अपने  
सहज खभावसे कहा— राजन् ।

भगत बिनु केहि अपमान सहौ ।

कहा कहा न असाधुनि कीनौ, हरि बल धरम रहौ ॥

अधम राज मद माते लै सिबिका जड़भरत नहौ ।

निगड़ सहे बसुदेव देवकी, सुत पटकत दुसह सहौ ॥

हरि ममताप्रहलाद विषाद न जाम्यौ, दुख सहदेव दहौ ।

पट लूटत द्रौपदि नहिं मटकी, हरि कौ सरन गहौ ॥

मत्त सभा कौरवनि विदुर सों कहा कहा न कह्यौ ।  
 सरनागत आरत गजपति को आपुन चक्र गह्यौ ॥  
 हा हरि ! नाथ ! पुकारत, आरत और कौन निबह्यौ ।  
 व्यास बचन सुनि मधुकरसाह भक्तिफल सदा लह्यौ ॥

अतएव—

हरि सों कीजै प्रीति निबाहि ।

कपट किये नागर नट जानत सब के मन की डाहि ॥  
 मैं फिर देख्यौ लोक चतुर्दस नीरस घर घर आहि ।  
 अपने अपने स्वारथके सब, मन दीजै अब काहि ॥  
 भक्ति प्रताप न जानत विष्टइ, भवसागर अवगाहि ।  
 जार जुवति गनिका कौ बेटा पहिंत्रानै न पिताहि ॥  
 जैसें प्यासौ मृग धावत, नहिं पावत मृगतृस्नाहि ।  
 ऐसैं तन धन सुत दारा झूँठे 'व्यास' मधुकरसाहि ॥

जो पहले धर्म-कर्मकी शिक्षा देनेमें कुशल राजपुरोहित थे वही  
 अब श्रीभगवद्गुरुकी दीक्षा देनेमें पूरे राजगुरु हैं। इस बातका  
 महाराजाका हृदय स्वीकार कर चुका। मोहरूप रात्रिका पौ  
 फट गया। जीवन सफल करनेको मार्ग मिल गया। बार-बार  
 नमन करने लगे और अपने भाग्यको सराहने लगे। शिक्षाके  
 साथ दीक्षा भी मिल गयी; जिनको लेने आये थे उनके हाथ अपने  
 आप बिक चले!

अब ओङ्छाधिष्ठि वापस जाने लगे तो अपने पूज्य गुरुदेव  
 श्रीव्यासदासजीकी आज्ञा लेने आये। उस समय राजगुरु अपने  
 शिष्यका हाथ पकड़कर समीप बैठाकर बोले—जाते तो हो, पर याद  
 रखना—

मेरे भक्त हैं देई देऊ ।

भक्तनि जानौ, भक्तनि मानौ, निज जन मोहि बतेऊ ॥  
 माता पिता भैया मेरे भक्त, दमाद सुजन बहनेऊ ।  
 सुख संपति परमेसुर मेरैं हरिजन जाति जनेऊ ॥  
 भवसागर कौ वेरौ भक्तै केवट बड़ हरि खेऊ ।  
 बूढ़त बहुत उवारे भक्तन लिये उवारि जरेऊ ॥  
 जिनकी महिमा कृष्ण, कपिल कहि हारे सर्वोपरि वेऊ ।  
 व्यासदास के प्रान जीवन धन हरिजन बाल बड़ेऊ ॥

अतएव, देवना कहीं इनकी सेवामें चूक न पड़ने पावे । गुरुकी आज्ञा सिर-आँखोंपर रखकर, दण्डवत्-प्रणाम करके महाराजने श्रीवनसे प्रस्थान किया । ओङ्कार पहुँचे, उसी दिनसे 'कंठी धरि आवै कोइ, धोइ पग, पीवै सदा' यह दृढ़ नेम निभाने लगे और भाव-भक्ति करने लगे । जो भी संत महात्मा आ जाते, महाराजा उनकी पूरी आत्मभगत करते तथा उनका चरणोदक पीते और सदा-सदैव संतोंकी ही सेवामें लगे रहते । महाराजा भी अब साधु-वेषमें पूर्ण निष्ठावान् हुए । किन्तु उनकी दृष्टि और संत-सेवाके भावको न समझकर उनके भाई-बन्धुओंने बहुत कुछ बाधा पहुँचानी आरम्भ की एवं उनको वृणाकी दृष्टिसे देखने लगे । उनसे उकताकर महाराजाने अपने दूज्य श्रीगुरुदेवको श्रीवन पत्र लिखा । उस पत्रके उत्तरमें महात्माजीने लिखा—

होइव सोई, हरि जो करिहै ।

तजि चिंता चरन सरन रहि, भावी सकल मिटरहै ॥  
 करिहै लाज नामा-नाते की, यह बिनती मन धरिहै ।  
 दीन क्याल विरद साँचौ करि, हरि दारुन दुख हरिहै ॥

सिंघनि सिंघ बीच बैठ्यो सुत, कैसें स्यारहि डरिहै ।  
 ऐसें स्यामा स्यामै थरु दै, डरि कै कौन विचरिहै ॥  
 सुनियत सुक मुनि बचन चहुँ जुग, हरि दोषनि संघरिहै ।  
 साधुनि कौ अपराध करत मधुकरसाहै ! न ताहि गुदरिहै ॥

राजपुरोहितानीजीने समझ लिया कि मन्त्रीके जानेसे न आये; और खतः महाराजाके जानेसे भी जो नहीं आये, वे अब यहाँ नहीं आवेंगे । अतएव अब मुझे ही उनकी सेवामें जाना चाहिये । यह विचार, वे अपने पतिसे मिल आनेके लिये महाराजासे आज्ञा लेकर पुत्रोंके साथ वृन्दावन आयीं । किन्तु श्रीव्यासदासजीने

१. गोस्वामी श्रीनाभाजीने 'भक्तमाल' ( भक्त-संख्या १५२ छप्पय ११७ ) में लिखा है—

X	X	X	X
मधुकर	नृप	सरबसु	दियो ।
भक्तनि	कौ	आदर	अधिक
राजवंस	में	इन	कियौ ॥

इसकी टीकामें श्रीप्रियादासजीने कहा है—

मधुकरसाह नाम कियौ लै सफल जाते

भेष गुन सार ग्रहै, तजत असार है ।

'ओरछे' कौ भूप भक्त भूप सुखरूप भयौ,

लयौ पन भारी, जाके और न विचार है ॥

कंठी धरि आवै कोइ, धोइ पग, पीवै सदा,

भाई दूखि खर गर डारयौ माल भार है ।

पाँय परछाल कही 'आज जू निहाल किये'

हिये द्रये दुष्ट पाँव गहे दग धार है ॥

( कवित ४८८ )

पूरी उदासीनता दिखायी, तब अन्य लोगोंने सिफारिश की कि यह तो आपकी अधीङ्गिनी हैं; इनके साथ कग्रेता करनी उचित नहीं है। आपने उत्तर दिया कि—

जो तिय होइ न हरि की दासी ।  
 कीजै कहा रूप गुन सुंदर, नाहिन स्याम उपासी ॥  
 तौ दासी गनिका सम जानो दुष्ट कुटिल मसवासी ।  
 निसिदिन अपनौ अंजन मंजन करत विषै की रासी ॥  
 परमारथ सुपनें नहिं जानत, अंध बँधी जम फाँसी ।  
 ताके संग रंग पति जैहै, तातें भली उदासी ॥

यह सुनकर पुनः बोले, ऐसा करेंगे तो आपको इनका शाप लगेगा। पुनः उत्तर दिया—

तिनुका कैसें रोकि सकै पावस परवाह नदी कौ ।  
 हरि अनुरागिनहिं लगै सरापन, सुर नर जती सती कौ ॥

तब तो सब चुप हो चले गये। इस सिद्धान्तका प्रभाव पुरोहितानीजीके हृदयपर पड़ा। वह समय पाकर इमके चरणोंमें गिरी और उसने दीनभावसे शरणमें रहनेकी प्रार्थना की—‘आपकी जो आज्ञा होगी आपकी यह दासी उसे ग्राणपणसे पालन करनेको प्रस्तुत है। आपके और आपके धर्म-प्रणके विपरीत रहकर यह जीना नहीं चाहती।’ संतजो बोले—‘अब तो यदि हरिदासी होकर वैष्णवोंकी सेवा करनी हो तब तो यहाँ तुम्हारा निर्वाह हो सकता है, नहीं तो नहीं।’ स्वीकार कर लेनेपर शिक्षा-दीक्षा देकर उसका ‘वैष्णवदासी’ नाम रख दिया और उसे संतसेवा करनेके कार्यमें

लगा दिया । पुत्रोंके ऊपर माताकी स्वाभाविक ममता होती ही है, अतः उनके लिये प्रार्थना की तो आप फिर वही वात बोले—

पूत मूत कौ एक मग, भगत भयौ सो पूत ।  
'व्यास' वहिरमुख जौ भयौ, सो सुत मूत कपूत ॥  
और—

हरि बिमुखनि जनर्णि जनि जावै ।  
हरि की भक्ति बिनु कुलहि लजावै ॥  
हरि बिनु विद्या नरक बतावै ।  
हरि नाम पढ़ै साधुनि अति भावै ॥  
हरि बोलि हरि बोलि कहुँ न ध्यावै ।  
हरि बोले बिनु 'व्यास' मुँह न दिखावै ॥

बहुत कहने-सुननेपर आप मान तो गये, पर उनको आपने दीक्षा नहीं दी । एकने परम संत स्वामी श्रीहरिदासजीकी साधुताका वर्खान किया तो आपने उसको चतुर समझकर उनके शिष्य होनेकी आज्ञा दी और उसने स्वामीजीसे दीक्षा ली । वह 'चतुर जुगलकिशोरदास' के नामसे प्रसिद्ध है । इसका संतोमें बहुत अनुराग था ।\*

कुछ दिन संत-सेवा करते बीते । एक समय महात्मा श्रीव्यासदासजीने अपनी पूर्वगृहिणी किन्तु अब शिष्या वैष्णवदासीमें नारी-स्वभाव-सुलभ काम-विकारका कुछ ढंग देखकर उनको एकान्त-शान्तिमें समझाया—

बिनती सुनिये वैष्णवदासी ।

या सरीर में बसत निरंतर नरक व्याधि पित खाँसी ॥

\* इनकी रची हुई कविता मिलती है । ब्रज छोड़कर ये अन्यत्र कहीं नहीं गये ।

ताहि भुलाइ हरिहि ढढ गहियौ, है सतसँग सुख रासी ।  
 बढ़े सुहाग ताहि मन दीनें, और बराक विसासी ॥  
 ताहि छाँड़ि हित करौं और सौं, गरे परै जम फाँसी ।  
 दीपक हाथ परै कूचा मैं, जगत् करै सब हाँसी ॥  
 सबोंपरि राधापति सौं रति करत अनन्य बिलासी ।  
 तिनकी पद रज सरन व्यास कौं गति बृंदाचनवासी ॥

श्रीवैष्णवदासीजी सारी वात समझ गयीं और तबसे उनकी कोई  
 चेष्टा वैसी नहीं हुई । एक समय रात्रिमें सदैवकी भाँति सब संत  
 ब्याघ करने वैठे, साथ ही श्रीव्यासदासजी भी वैठे । वैष्णवदासी पूरी  
 परसकर दूध परसने लगीं । परसनी-परसती जब श्रीव्यासदासजीको  
 परसने लगीं तो संयोगवश इनके कटोरेमें दूधके साथ मलाई भी  
 गिर पड़ी । वह दूध इन्होंने न पिया । ब्याघ हो चुकनेके बाद  
 आपने कहा, ‘तुमने यह क्या किया ? और सब संतोंको दूध,  
 मुझे दूध और मलाई दोनों ! तुमने यह पंक्तिमेद किया; मेरे धर्मको  
 तुम कलङ्क लगाना चाहती हो ? तुम यहाँसे चली जाओ, इतना भेद-भाव  
 रखनेवाली तुम अभी संत-सेवाके योग्य नहीं हो ।’ यों कहकर उसे सेवासे  
 हटा दिया । उसने बहुत निहोरा किया परंतु उसकी एक न सुनी । उस  
 दृढ़वतवाली देवीने भी यह प्रण किया कि संत-सेवा मिलेगी तो ही  
 अन्न-जल प्रहण करूँगी; नहीं तो नहीं । और ऐसा करके अन्न-जल  
 त्याग दिया । श्रीव्यासदासजीसे संतजनोंने कहा, ‘महात्माजी ! आप  
 अनजानमें हुई एक साधारण-सी बातपर इतना कठिन दण्ड देंगे तो  
 आपके आश्रित जीकका भला निर्वाह कैसे होगा ? उनका दोष भी  
 नहीं है । यदि वे दूधसे पृथक् करके मलाई आपको लाकर

देतीं, तब तो आपका यह उच्छवना कुछ ठीक भी कहा जा सकता था; किन्तु अपने-आप दूधके साथ आपके कटोरेमें मलाई गिर पड़ी इसमें उन बेचारीका क्या दोष ? आपने उनको निकाल दिया यह हम सबको अच्छा नहीं लगा । और आप यह कहें कि उन्होंने यह भूल ही क्यों की, तो बात यह है कि, ‘जो सेवा करता है उससे भूल भी कभी हो ही जाती है। ऐसी अवस्थामें क्या उसे निकाल देना उचित है या समझा देना ? उनका जी दुखाया है, उन्होंने आज तीन दिन हुए अन्न-जलतक नहीं लिया है। क्षमा कीजिये—

तिय हित शिनय संत सब कीन्हे ।  
ऐसो तब करार करि दीन्हे ॥  
भूषन बैचि जो संत खवावै ।  
तौ मेरे घर आवन पावै ॥

( रामरसिकावली )

यह सुनते ही उस वैष्णवदासीने तुरंत अपने अङ्गके सब आभूषण उतारकर बाजारमें बेच दिये ।\* और उस रकमसे रसोई बनानेका बहुत-सा सामान खरीदकर मुकाममें पहुँचा दिया । अनेक प्रकारके पदार्थ बनवाकर सेव्य श्रीजुगलकिशोरजीको भोग धराया । सभी संतों-महात्माओंको निमन्त्रण दे, बुलाकर प्रसाद कराया और सब संतोंका चरणामृत तथा सीथ-प्रसाद उसने लिया । † तब दृढ़-धर्मी

\*कहते हैं बाईस हजार रुपयोंके हुए थे ।

†तब निज भूषन बैचिके, नारी अति हरषाय ।

संत समाज बुलाइके, सादर दियौ पवाय ॥

( स० म० श्रीघुराजसिंहजी रीवाँ )

महात्माजीने पुनः वैष्णवदासीको संत-सेवा सौंपी । आप ऐसे पूरे विरक्त और संत-सेवी थे । इसी प्रकार परमभाग्यवती देवीजीने भी जब आपने प्रणके अनुसार दृढ़-धर्मसे संत-सेवा ले ली तभी प्रण छोड़ा और महाप्रसाद पाया । लोगोंने चर्चा की कि 'देखो इसने अपने पतिके जीते-जी सब शृङ्खार उतार दिया; जरा भी लोक-लाज न रखी ।' इसर धर्मकिमती श्रीवैष्णवदासीजी कुछ न बोलीं, पर महात्माजीने सबको सुनाया—

व्यास भक्ति सहगामिनी टेरें कहत पुकारि ।  
लोक लाज तब ही गई, बैठी मूँड़ उघारि ॥

ओड़छासे परमभक्त महाराजाने सेव्य श्रीयुगलकिशोरजीको धारण करानेके लिये खर्णकी एक नक्सीदार सुन्दर वंशी बनवाकर भेजी । उसको आप बड़े चावसे प्रभुके करमें धारण कराने लगे । कुछ मोटी थी, जिससे प्रभुकी अँगुली किञ्चित् छिल गयी; रक्त निकल आया । यह देख आपने वंशीको पटक दिया और तुरंत जलमें भिंगोकर एक कपड़ा अँगुलीमें बाँध दिया ।\* मनमें बहुत पछताये; महाप्रसाद नहीं पाया । वंशीको दोष देने लगे । सायङ्काल प्रभुने अपने-आप वंशी धारण कर ली जिसको देखकर आप अत्यन्त आनन्दित हुए ।

\* वह वस्त्र आज भी आपके परम धन प्रभु अपनी अँगुलीमें बाँधे रहते हैं । अब 'पन्ना' में हैं । श्रीव्यासदासजी निकुञ्ज पधारे, पश्चात् महाराजा वृन्दावनसे ले गये । वृन्दावनमें उनकी जगह दूसरी युगल मूर्ति विराजमान हैं । स्थल व्यास-धरोंके नामसे प्रसिद्ध है ।

किसी समय महाराजा की भेजी हुई एक सुन्दर जरकसी पाग आयी। आप प्रभुके मस्तकपर बाँधने लगे; किन्तु नयी और जरकसी होनेके कारण जैसी बाँधनी चाहते थे वैसी बँधती नहीं थी, खिसक जाती थी। ऐसे बहुत बार खिसकती देख झुँझलाकर उसे बहीं छोड़—‘लीजिये, मेरी बाँधी पसंद न आती हो तो आप ही बाँधिये’—कहते हुए रिसियाकर सेवा-कुञ्जके दरवाजेपर जा बैठे। यहाँ प्रभुने खयं पाग बाँध ली। दर्शकोंने इनकी बड़ाई की कि, ‘आपको धन्य है, आज आपने प्रभुको बड़ी सुन्दर पाग बाँधकर हमको दर्शनोंका लाभ दिया।’ इतना सुनते ही आप तुरंत दौड़े। आकर देखते हैं तो सचमुच मनमानी पाग बाँधी है। गद्दद हो गये। प्रेमावेशमें बोल उठे—‘अरे सुवड़ सलोने ! तुझे अपनी ही बाँधी पसंद है; खूब सुन्दर बाँधी है। इसके सामने भला मेरी बाँधी क्यों पसंद करने लगा ?’

संत श्रीव्यासदासजी भजन-भावना और रासरंगमें जितने गहरे रसिक थे उतने ही संत-सेवा करनेमें भी पूरे परमार्थी थे। इनके पास सदैव संतजनोंकी मण्डली आती-जाती रहा करती। ये सबके आगे विनम्रभावसे हाथ जोड़े रहते, उनको सब प्रकार सुख देते। संतोंका आना इनको बड़ा प्रिय लगता, पर उनका जाना दुःखका कारण बन जाता। इसलिये जहाँतक बनता ये संतोंको रोक रखनेका प्रयत्न करनेमें कोई कसर नहीं करते, पुनः आनेकी प्रार्थना भी करते। संत भी इनके शीलस्नेहयुक्त निश्छल खभावके कारण इनके पास बिरमे रहते। वे कहा करते—

श्रीबृन्दावनमें मंजुल मरिबौ ।

जीवन्मुक्त सबै ब्रजबासी पद रज सौं हित करिबौ ॥  
 जहाँ स्याम बछुरा है गायनि चौंपि तृतीनि कौ चरिबौ ।  
 हरि बालक गोपिन पय पीवत हरि आँकौ भरि मिलिबौ ॥  
 सात रात दिन इंद्र रिसानौ, गोवरधन कर पर धरिबौ ।  
 प्रलय मेघ मधवाहि विमद करि कहि सब सौं नहिं डरिबौ ॥  
 अघ बक बकी विनासि रास रुचि सुखसागरमें तरिबौ ।  
 कुंज भवन रति पुंज चयनि करि राधाके बस परिबौ ॥  
 ऐसे प्रभुहि पीठि दै लोभ रति माया जीवनि जरिबौ ।

एक संत पुरुष इनकी सरल साधु-वृत्ति, सत-सेवा और सहनशक्तिके यशको सुनकर परीक्षा लेने पথारे । मन्दिरके भीतर प्रवेश करते ही भोजन माँगा । बोले, ‘हमारे रामको बड़ी क्षुधा सता रही है; शीघ्र भोजन कराओ; भूखे नहीं रहा जाता है ।’ ये हाथ जोड़कर बोले, ‘संतजी ! प्रभुको भोग धराये बिना आपको कैसे भोजन कराया जाय ? आइये शान्तिसे विराजिये, बहुत देर नहीं है; योड़ी देरमें अभी राजभोग लगेगा, धीरज रखिये ।’ इतना सुनते ही संतजी इनको गालियाँ-पर-गालियाँ देने लगे । संत-सेवी श्रीव्यासदासजीने मौन होकर बैठे-बैठे उनकी वह सब गालियाँ ऐसे सुनाँ, जैसे कोई अपनी प्रशंसाके वचन सुनकर प्रसन्न होता है । दर्शकोंमेंसे किसीने उनको यह कहकर गालियाँ देनेसे मना करना चाहा कि ‘आपका ऐसा क्या काम बिगाड़ दिया है जो गालियाँ दे रहे हो ।’ इतनेमें इन्होंने तुरंत यह कह समझाया कि ये गालियाँ नहीं हैं ।

‘व्यास बड़ाई और की जु मेरे मन धिक्कार ।  
 संतन की गारी भली यह मेरौ सिंगार ॥

इतनेमें भगवान् श्रीजुगलकिशोरजीके राजभोग लग चुका । तब महात्माजीने एक बड़ा थाल भरकर संतजीके आगे रखा और हाथ जोड़कर बोले, ‘कृपा करके आप यह प्रसाद पा लीजिये । जो बाकी रही हों उन्हें फिर देना ।’ संतजी प्रसाद पाने बैठे और यह उनको हवा करने लगे । संतजीने महाप्रसाद पाकर बची हुई जूठनकी थाल यह कहकर इनके मस्तकमें मारी कि ‘ले, यह तेरा भाग है ।’ महात्माजीने बार-बार उनके चरणोंमें अपना मस्तक नवाया और वह सब जूठन समेकर आप पाने लगे ।

अब परीक्षक संत पुरुषजीसे न रहा गया । वह अत्यन्त आनन्दित होकर धन्य-धन्य कहने लगे, चरण छूने लगे और बोले—‘मैं आपकी साधु-सेवाकी उत्कृष्टताको सुनकर परीक्षा करने आया था । इसमें सन्देह नहीं कि उस सुनी हुई बातसे कई गुना अधिक आप निश्चल, सात्त्विक और श्लाघनीय महात्मा हैं ।’ ये बोले—‘यह सब आप संतोंकी परम कृपाका प्रताप है । इसीसे मुझे—

**भावत हरि प्यारे के प्यारे ।**

जिनके दरस परस हरि पाये, उधरे भाग हमारे ॥

दूरि भये दुख दोष हृदयके कपट कपाट उधारे ।

भवसागर बूझत हमसे अपराधी बहुत उबारे ॥

भूत पितर देई देवा सौँ झगरे सकल निवारे ।

सुक मुखबचन रचन कहि कोटिक विगरे ‘ब्यास’ सुधारे ॥

परीक्षक संत अपनी साधुताको इनकी साधुताके आगे तुच्छ मानने लो—

इनकी महाप्रसादनिष्ठा भी अपूर्वी थी । ये अपने सेव्य श्रीजुगलकिशोरजीका महाप्रसाद तीन सौ साठ दिन समान रीतिसे सेवन करते थे । अपने इष्टदेवके जो पदार्थ भोग लग चुका उस श्रीमहाप्रसादके एक कनिकाको ही समस्त ब्रतोंसे विशेष महत्त्वयुक्त ब्रत मानते थे; और इसमें ये दृढ़ब्रती थे । इनके इस महाब्रतमें यदि कोई नूतन संत इनके यहाँ आते और वह एकादशीके दिन महाप्रसाद पाते देख शङ्खा करते तो आप उनको तुरंत कह दिया करते थे कि ‘मगवन् ! मैं एकादशीका भक्त नहीं हूँ; मैं तो—’.

( श्री ) राधावल्लभ काँ हों भावनौ चेरौ ।

राधावल्लभ कहत सुनत ही, मन न नेम जम केरौ ॥

राधावल्लभ वस्तु भ्रूलिहँ कियो अतत नहिं फेरौ ।

राधावल्लभ व्यासदास के सुनहु स्ववन दै टेरौ ॥\*

इसी हेतुसे—

हमारी जीवन मूरि प्रसाद ।

अतुलित महिमा कहत भागवत, मेटत सब प्रतिवाद ॥†

\* कहनी करनी करि गयौ एक व्यास इहि काल ।

लोक वेद नजिके भंज राधावल्लभ लाल ॥

( श्रीहितव्यवाणी )

† यन्नामश्रुतिमात्रण युमान् भवति निर्मलः ।

तस्य तीर्थपदः कि वा दासानामवशिष्यते ॥

( श्रीमद्भा० ९। ५। १६ )

जो षट्मास ब्रतनि कीने फल, सो इक सीथ के स्वाद । \*  
 दरसन पाप नसात, खात सुख, परसत मिटत विशाद ॥  
 देत लेत जो करै अनादर, सो नर अधम गवाद । †  
 व्यास प्रीति परतीति रीति सौं जूँठनि ते गुन नाद ॥

यह अपने परम पूज्य श्रीगुरुदेव हितप्रभुजीकी भाँति विधि-  
 निषेधके झंझटसे एकदम पृथक् थे । आप जब-तब कहा भी करते—  
 ‘व्यासहि अब जिनि जानियौ, लोक वेद कौ दास ।’ अन्तमें आप  
 अपना अहोभाग्य किस प्रकार मानते हैं, यह भी देखने ही योग्य  
 है । कहते हैं—

\* षड्मिर्मासोपवासैस्तु यत्कलं परिकीर्तिंतम् ।

विष्णोनैवेद्यसिक्येन तत्कलं भुज्ञतां कलौ ॥ ( स्कन्दपुराण )

‘छः महीनेतक एकादशी इत्यादि ब्रत-उपवास करनेसे जितना फल  
 शास्त्रोंमें लिखा है, उतना फल तो भगवान् श्रीहरिके नैवेद्यका कण्मात्र  
 पानेसे प्राप्त हो जाता है ।’

एकादशीसहस्रेण द्वादशीनां शतं च ।

यत्फलं लभते गौरि विष्णोनैवेद्यभक्षणात् ॥ ( पद्मपुराण )

‘हे गौरि ! हजारों एकादशी, सैकड़ों द्वादशी इत्यादिका ब्रत करनेसे  
 जो फल होता है, वह फल केवल श्रीहरिका महाप्रसाद सेवनमात्रसे होता है ।’

† स्वतः एकादशी शृष्टि-मुनियोंके समक्ष कहती है—

प्रसद्य हरिदत्तान्नं ये भुज्ञन्ति नरोत्तमाः ।

तान् विलोक्य पवित्राहमेकादशी द्विजोत्तमाः ॥ ( नारदपाञ्चरात्र )

‘जो उत्तम मनुष्य वलात्कारसे भी श्रीहरिप्रसादको मेरे दिन पाते  
 हैं, हे उत्तम द्विजो ! उनको देखकर ( उनके दर्शनसे ) मैं एकादशी  
 स्वतः पवित्र होती हूँ ।’

तन अबही कौ कामै आयौ ।

साधुचरन कौ संग कियौ, जिनि हरिजू कौ नाम लिवायौ ॥

धन्य बदन मेरौ, जिनि रसिकन कौ जूठौ खायौ ।

रसना मेरी धन्य, अनन्यनि कौ चरनोदक प्यायौ ॥

धन्य सीस मेरो, श्रीराधा रवन रेनु रस लायौ ।

धन्य नैन मेरे, जिनि वृद्दावन कौ सुख दिखरायौ ॥

धन्य श्रवन मेरे, श्रीराधा रवन बिहार सुनायौ ।

धन्य चरन मेरे, श्रीवृद्दावन गहि अनत न धायौ ॥

धन्य हाथ मेरे, जिनि कुंजनिमें मंदिर छायौ ।

धन्य व्यास के श्रीगुरु, जिनि सर्वोपरि रंग बतायौ ॥

व्यास भक्ति कौ फल लह्यौ, वृद्दावन की धूरि ।

हित हरिबंस प्रताप तें पाई जीवनि मूरि ॥

इनका परिचय रसीले सुलेखक श्रीवियोगी हरिजीने अपनी थारी  
लेखनीसे जिन मधुर शब्दोंमें दिया है, वह इस प्रकार है—

भक्त सिरोमनि 'व्यास', ओरछा नगर निवासी ।

श्रीहरिबंस प्रसंस शिष्य हित धाम बिलासी ॥

अनुरागी रसमसो रँगीलो राधा पी को ।

बिधि निषेध मग त्यागि पान किये धूँट अमी को ॥

राधावल्लभ सेइ निगम की कानि न राखी ।

ब्रज बिहार पद गाय कही अति साँची साखी ॥

रसिकाभरन अनन्य 'व्यास', जय आनंद रासी ।

श्रीब्रजचंद्र चकोर राधिका चरन उपासी ॥

## मामा श्रीप्रगगदासजी

गुन गौरव औ वृत्ति कीर्ति पराइ विलोकि हियो विगसात अहै ।  
 अघ दोष न देखत काहु के जे, जेहि देखत दोष नसात अहै ॥  
 अकलंक मयंक सुभानन तैं वचनामृत 'विंदु' चुचात अहै ।  
 तिनकी पग धूरि सुमंगल मूरिहि भूरि मेरौ प्रनिपात अहै ॥१॥  
 जिनके सुचि सीतल सील में जायके कोप की आग बुझात अहै ।  
 लहि वारि प्रसंसाहु मानस जो सकुचानहि में बढ़ि जात अहै ॥  
 समसील उदार सबै जगती जेहि राममर्यादि दिखरात अहै ।  
 अस संत अनंत समान कोऊ वहु 'विंदु' तिन्हैं प्रनिपात अहै ॥२॥

आयो धौ यहि काल कस, अति दुकाल हा हंत !

गयो जु उड़ि केहि व्योम वै राजहंस अरु संत ॥

प्राचीन कालमें ऐसे अनेक संत हुए हैं, जिन्होंने अपनी आत्मामें परमार्थको सार्थक और इस प्रकार भक्ति-ज्ञान और वैराग्यको चरितार्थ किया था । वे आत्मदर्शी सिद्ध थे । परमात्मतत्त्व उन्हें सिद्ध था । अतएव वे आध्यात्मिक महात्मा थे । उनका हृदय आत्मसरोवरका पुण्डरीक था । वे उच्च कोटिके भावुक और प्रेमी थे, पर उनका विहारस्थल आत्मा था अथवा वह मन, जो उस आत्मसरोवरमें निमजित होकर चिदाकार हो चुका था । वे आत्माराम और आत्मक्रीड थे । उनकी रति-गति आत्ममें थी । वहीं वे अपने रामसे खेलते और लाड़ लड़ते थे । उनके हृदयकी आँखें खुली हुई थीं और वे समदर्शी थे । उनके लिये सम्पूर्ण जगत्, कहीं चित्रकूट, कहीं मिथिला, कहीं वृन्दावन और कहीं अयोध्या हो रहा था ।

मधुर रस राते मदसे माते ।

कवहुँ विहँसि नयना भरकाते, कवहुँ ताल दै गाते ।

सहित उछाह प्रिया प्रियतम पर कल्प सुमन वरसाते ॥

चित्रकृष्ण मिथिला वृद्धावन कुंज कुंज रमि जाते ।

‘केशी’ सुगम ध्यान धारणा जीवन को फल पाते ॥

( भगवती मञ्जुकेशी देवी )

उन्हें सर्वत्र ‘सियाराम’ ही दिखायी देते थे । उनके लिये परल यदि कहीं था, तो केवल अद्वैत परमतत्व परब्रह्ममें ही । वे क्या करते, उनके रामने तो समस्त दिशाओंको अपना क्रीडास्थल बना लिया था । फिर बेचारा द्वैत अपनी विरोधलीला कहाँ दिखाये । पहले तो उनके रामने उनके समूर्ण हृदयको ही अधिकृत कर लिया, पुनः उनके अखिल वातावरण ( दिव्योम ) को धेरकर उनकी इन्द्रियोंके सब रास्तोंमें अड़ गये । कोई जय तो कहाँ जाय !

उमा जे राम चरन रत विगत काम मद क्रोध ।

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध ॥

( श्रीमानम )

उस नवल नटनागरके नेपथ्यमें पहुँचकर उन्होंने देखा कि वही राम है जो साकेतके पूर्णश्वर्यपीठ सर्वमौमचक्रवर्ति-राज्यसिंहासन-पर अखिल जगन्नायक होकर सुशोभित हैं और वही वृन्दावन आदि कुञ्जोंमें कुञ्जनायक होकर रमण कर रहा है । उन्हें उसकी क्रीडामें सम्मिलित होना था, अतः जहाँ-जहाँ वह नायक वहाँ-वहाँ उसके बे सहायक-जहाँ-जहाँ कमल वहाँ-वहाँ मधुकर, जहाँ-जहाँ शर्करा वहाँ-वहाँ पिपीलिका । रसको रसिक कैसे छोड़े ? रस-

रसाकरमें दूबे हुए रस-भोगी भला, तर्कके कटु कर्कश कर्कटसे अपने  
कोमल अङ्ग क्यों कटाने लगे ? उस परम प्रियतमने उन्हें इतना  
झुभा लिया है, इतना अपना लिया है, उन्हें इस तरह अपनेमें  
आसक्त कर रखता है, कि उसके सौन्दर्य-माधुर्यके आख्यादनसे  
उन्हें अवकाश ही नहीं ! वे तो उस प्रेयान् रसके प्रह्लण करनेके एक  
करणमात्र होते हैं—उनकी एक ही ब्रह्माकारवृत्ति होती है । रसिकता-  
का यही स्वरूप ही है । यथार्थ वस्तु-ज्ञान या विशेषज्ञता ही मार्मिकता  
है और मार्मिकता ही रसज्ञता है तथा रसज्ञता ही यथार्थ रसिकता  
है । यहाँ ज्ञान और रस अथवा प्रेम भिन्न पदार्थ नहीं, किसी  
चिन्मय और अद्वितीय तत्त्वके वे गुण-धर्म अथवा विशेषणमात्र हैं ।  
सूफियोंका यही लक्ष्यस्थान है—

राम रहस के ते अधिकारी ।

जिन को मन मरि गयो, और मिटि गई कलपना सारी ॥

चौदह भुवन एक रस दीखै, एक पुरुष, एक नारी ।

‘केशी’ रामनाम सोइ जानै, ध्यावै अवधिविहारी ॥

जो भरे-पूरे होते हैं, उन्हींमें रसिकता और क्रीडासक्ति उत्पन्न  
होती है । उनका जीवन ही सुख-विलासमय होता है । उन्हें अपने  
प्राणारामसे अवकाश ही इतर भावनाओंके लिये कहाँ ? मन-बुद्धि  
और उनके चित्तको तो उसने अपनेमें लीन कर लिया है । लखनऊ-  
के नवाब वाजिद अली शाहसे मदोन्मत्त मौलवियोंने श्रीअयोध्याजीकी  
जन्मभूमिपर आकर्मण करनेके लिये बहुत आग्रह किया, तब उनकी  
दरखास्तपर उन्होंने यह शेर लिखकर दस्तखत कर दिये—

हम बन्दू-इङ्क़ हैं, मज़हबसे नहीं वाक़िफ़ ।

काबा हुआ तो क्या, बुनखाना हुआ तो क्या ॥

जब एक रागासक्त प्राकृत रसिकके हृदयमें द्वेष-दुराग्रहके लिये स्थान नहीं रह जाता, तब भगवद्सिक समता और निर्विरोधताकी किस काष्ठातक पहुँच जायगा, यह सहृदयजन सहज ही अनुमान कर सकते हैं। संतोंकी यह विशेषता है कि वे समशील और उदाराशय होते हैं। समता ही वह भूमिका है, जिसमें उदारता, विश्वबन्धुता, सर्वात्मीयता, और दयालुता आदि दिव्य लताएँ उत्पन्न होती हैं। भगवद्गुरु होनेका यह लक्षण है, भगवच्चरणोंमें चित्तसमर्पणका यह प्रमाण है कि उसमें भगवदीय दिव्य गुणोंका उद्घम हो। भगवान्‌के भक्त भगवान्‌से भी अधिक माने जाते हैं—‘राम ते अधिक राम कर दासा।’ उसका हेतु यह है कि यदि भक्त न होते तो भगवान्‌को कौन जानता और जनाता, कौन मानता और मनाता? यदि वेदोंने भगवान्‌की भावना उत्पन्न की है, तो भक्तोंया संतोंने भगवान्‌को उत्पन्न किया है—‘लोग कहते हैं कि दहको माबूदने पैदा किया। मैं वह खालिक हूँ कि मेरे ‘कुन’ से खुदा पैदा हुआ।’ भगवान् भक्तोंके हैं और भक्तोंके लिये हैं, इसी प्रकार भक्त या संतजन भगवान्‌के हैं और भगवान्‌के लिये हैं—

जद्यपि राम सीर्वं समता के। भरत सनेह सिंधु ममता के ॥

आज ऐसे ही भगवान्‌के एक अलबेले भावुक संतकी कुछ चर्चा करके अपनी वाणीको कृतार्थ करनेकी इच्छा है।

जनकपुरमें एक ब्राह्मणी माता रहती थी। उसके पति खर्गमें थे और विपत्ति उसके घरमें। उसका एकमात्र पुत्र प्रयागदत्त था। एक दिन उसने अपनी मातासे पूछा—‘माँ! क्या मेरे और कोई नहीं है?’ माताने बच्चेके सन्तोषार्थ कह दिया—‘हाँ, बेटा! तुम्हारे

है क्यों नहीं कोई । बहनोई हैं । वे चक्रवर्ती राजाधिराज हैं । अयोध्या उनकी राजधानी है ।' मिथिलाकी माताएँ स्वभावतः श्रीजनकनन्दिनीके प्रति पुत्री या भगिनीभाव रखती हैं । बच्चेने कहा—'तो, माँ ! मैं उनके पास जाऊँगा ।' माता बोली—'अच्छा, कुछ और बड़े हो तब जाना ।' इस प्रकार टाल दिया । लेकिन बालकके हृदयमें बहनोई बस गये । उसकी सुरति बहनोईमें लग गयी । किसी तरह कुछ दिन बीते । फिर एक दिन प्रयागदत्तने मातासे कहा—'माँ ! अब तो मैं सयाना हो गया । अब मुझे बहनोईके पास जाने दो ।' माताने उत्तर दिया—'अच्छा, ठहरो, मैं तैयारी कर दूँ, बहिनके लिये कुछ लेते जाओ ।'

माताने चावलोंके कुछ कण इकट्ठे किये थे । उन्हें पीसकर और मीठा मिलाकर कुछ मोटक बनाये, जिन्हें मिथिलामें 'कसार' कहते हैं । उन कसारोंकी पोटली प्रयागदत्तको दंकर विदा किया और कुछ सत्‌तु उनके खानेके लिये भी दे दिया ।

प्रयागदत्त बहिन-बहनोईसे मिलने वडी प्रसन्नता और उत्सुकता-से चले । मनमें यही होता कि कैसे जल्द और जल्दसे भी जल्द अयोध्या पहुँच जाऊँ । अगर पर होते तो वे जरूर उड़ जाते ! तब भी न आकाशमें सही पृथ्वीपर उड़तेही-से जा रहे हैं । जहाँ कहीं अपने शारीरिक कृत्यके लिये ठहरते हैं, किसी वृक्षकी डालमें वह पोटली टाँग देते हैं । इस प्रकार कुछ दिनोंमें वे अयोध्याजी पहुँच गये ।

अयोध्यामें प्रयागदत्त अपने चक्रवर्ती बहनोईको खोजने लगे, जिससे पूछते, वह हँस देता । बेचारे बहुत परेशान हुए । बहनोईजी

कहाँ नहीं मिले । मणिकूटकी ओर गये । वहाँ भी खोजते रहे । किरंतंग आकर एक जगह ( जहाँ सीताकुण्डको जानेवाले रास्तेके दक्षिण सबन विश्वावलिसे आच्छादित पुरानी मसजिद है, जिसमें पूर्वमें हनुमन्निवास—श्रीअयोध्याके महात्मा बाबा गोपतीदासजी महाराज भजन करते थे ) बैठ गये । बहुत थक गये थे । वहनोई-जीको रिस्तेसे खूब गालियाँ देने लगे । कहने लगे—‘दखो इतना हँड़ा, हेरान हुआ, कहाँ भिलता ही नहीं । न जाने कहाँ रहता है ? अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ?’ इतनेमें एक श्वेत हाथीपर सोनेकी अम्बारीमें त्रिराजे हुए । उनकी बहिनसहित वहनोई साहब आ निकले । हाथी वहीं साले साहबके पास बैठ गया । श्रीकिशोरीजीने पूछा—‘मैया ! माताने हमारे लिये कुछ दिया है ?’ मैयाकी तो गति ही अचिन्त्य हो गयी । किसी तरह अपनेको सँभालकर कहा—‘हाँ, बहिन ! यह है, लो ।’ पोटली दे दी और बोल—‘मैंने तो बहुत खोजा, तुमलोग मिले ही नहीं । न जाने कहाँ रहते हो ! कोई बताता ही नहीं ।’ श्रीकिशोरीजीने पोटली लेते हुए कहा—‘हाँ, मैया ! तुम्हें कष्ट तो बहुत हुआ । क्या करें, हमलोग ऐसी जगह रहते हैं, जिसे सब लोग नहीं जानते ।’ जगन्माताने माताकी भेजी हुई और मैयाकी दी हुई उस पोटलीमेंसे दो कसार निकाल लिये और शेष प्रयागदत्तको देते हुए कहा—‘मैया ! इन्हें तुम खाना । और अब तुम जाओ घर, माता चिन्ता करती होगी । कुछ दिनोंके बाद फिर आ जाना और मातासे कह देना कि हमलोग बड़े सुखसे हैं । फिर मिलेंगे ।’ हाथी खड़ा हो गया और कुछ दूर जाकर अदृश्य !

मामाजी अपने बहिन-बहनोईके ध्यानमें विद्वल वहाँ पड़े रहे । बाणी रुद्र और नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह जारी था । दूसरे दिन दिनकर-

करों और दक्षिणानिलके स्पर्शसे उनकी चेतना जाग्रत् होने लगी और दशा सँभलने लगी। उधर ही एक संत आ निकले। उन्होंने देखा कि एक सुन्दर-सुगौर कुमार बेतरह पड़ा हुआ है। निकट जाकर उसे ध्यानसे देखा और हाल पूछा। यद्यपि उसने ठिकानेसे कुछ बताया नहीं तथापि महात्मा रहस्य ताड़ गये। निकट ही उनकी गुफा थी। प्रयागदत्तको वहीं ले गये। उचित उपचार किया। स्नान-जलपान कराया। जब वे सावधान हुए तब फिर एक बार उन्होंने उनका हाल पूछा। पूछते ही फिर वे रो पड़े। महात्माजी भी आर्द्ध हो गये। कुछ देरतक यही दशा रही—

कोउ किछु कहइन कोउ किछु पूछा। प्रेम भरा मन निज गति छूछा ॥

अनन्तर प्रकृतिस्थ होनेपर प्रयागदत्तजीने खयं महात्माजीसे अपना सब वृत्तान्त कहा। महात्माजीने गङ्गा होकर उन्हें लातीसे लगा लिया।

मेरे प्यारे का यह भी प्यारा है। मेरी आँखोंका भी सितारा है॥  
 घड़ी रात गये कुछ ग्रामीण माताएँ आर्यों और दो भोग-थाल निवेदन करती हुई बोली—‘आज हमारे यहाँ भगवान्‌की पूजा और कथा हुई है। यह प्रसाद आपलोगोंके लिये लायी हैं। ले लीजिये, थाल सबेरे चले जायेंगे। हमें घर जल्द पहुँचना है। रात हो गयी है।’ थाल रखकर यह कहती हुई वे तुरंत उलटे पैर लौट गयीं। थाल न जाने किस खानके अद्भुत सोनेके थे। उनपर पुरैनके पत्ते बिछे थे, जिनपर नाना प्रकारके व्यञ्जन चुने थे। महात्माजी और मामाजी मन्त्रमुग्धकी तरह देखते रह गये। पीछे जब महात्माजीने

पते टालकर थाल देखे, तब हैरान रह गये । रहस्य समझ गये । जगजननी बहिनने भाईकी पहुँचाई की !

सहृदय महात्माजीने प्रयागदत्तजीको प्रेमसे खिलाया और ख्यं भी पाया । उन लोकोत्तर रसाखादमय दिव्य भोगोंका सेवन करके वे दोनों महात्मा मस्त हो गये । वे सब पदार्थ भगवद्स ( ब्रह्मानन्द ) से सने हुए थे, स्थूलताका छरण करनेवाले थे और चेतनताका सञ्चार करनेवाले । तत्काल नवीन तेज, नवीन बल और नवीन चेतनता-से शरीर चमक उठे । मामा प्रयागदत्तजीका सारा श्रम और ग़लानि क्षणभरमें कपूरकी तरह उड़ गयी । हृदय-कमल आनन्दरस-सरोवरमें लहराने लगा ।

प्रातःकाल प्रयागदत्तजीको विदा करते हुए महात्माजी वे दोनों खर्ण-थाल साफीमें लपेटकर उन्हें देने लगे; क्योंकि उनका कोई लेनेवाला न आया और न आनेवाला था । परन्तु प्रयागदत्तजी-ने नहीं लिया, बोले कि ‘माता रिसायगी, कहेगी कि बहिनकी चीज क्यों लाये । वह कन्याकी वस्तु कैसे लेगी ।’ अस्तु, बाबाजी उनके साथ गये और रास्तेपर पहुँचाकर जब लौटे, तब थाल ले जाकर गणेशकुण्डमें डाल दिये—

रमा विलास राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥

बहिन-बहनोईकी भावनामें मस्त प्रयागदत्तजी घर पहुँचे । माताने पूछा । सब हाल कह सुनाया । पुत्रका वृत्तान्त सुनकर माता चकित रही और बहुत प्रसन्न हुई । हृदयके तलसे एक प्रबल परन्तु गम्भीर करुण-स्रोत छूट निकला और आँखोंमें छलछला उठा ।

साल बीतने भी नहीं पाया कि जगन्माताका अंश वह माता पतिलोकको प्रयाग कर गयी । प्रयागदत्तजी अकेले रह गये । घरमें और कोई भी नहीं । माताके देव-पितृ-कर्मके बाद अकेला पाकर वैराग्य और अनुराग, दोनों उन्हें पूर्णतया अविकृत करने लगे । इधर पासहीके एक ग्रामके पण्डितजी उन्हें अपना जामातृ बनानेके लिये घेरने लगे । सुसम्पन्न और प्रतिष्ठित ब्राह्मण थे । चाहते थे कि प्रयागदत्तको जमाई बनाकर अपने घर रखें और अपना उत्तराधिकारी बनायें । उनके भी एकमात्र कन्या रह गयी थी । पुत्र स्वर्गगामी हो चुके थे । यद्यपि प्रयागदत्त दीन और दरिद्र थे, पर रूप, शील और कुलसे सम्पन्न थे । उनके पूर्व-पुरुषोंमें अनेक यशस्वी विद्वान् हुए हैं । उनके पिता भी सात्त्विक गुणोंसे मण्डित एक प्रतिष्ठित पण्डित थे । जनताकी उनमें बड़ी श्रद्धा थी । बहुत लोग उनके शिष्य थे । अच्छी सम्पत्ति सञ्चित थी । परन्तु काल-चक्रने पलटा खाया । उनके जीवनके अन्तके साथ ही उनकी सम्पत्तिका भी अन्त हो गया । अग्निदेवने दैवात् सर्वेष्व स्वाहा कर दिया—जो कुछ घरमें था, घरसहित जल गया । माता केवल उस अमूर्य धन-रत्न शिशु प्रयागदत्तको दोनों करोंसे समेटकर और अपने अङ्कोंमें भरपूर भरकर बचा सकी थी । उस समय भाग निकलना ही उसका परम भागवेय था । लोगोंने कहा कि ‘लड़का अभागा है, कुलच्छन है । पिताका भी भक्षण किया और धन-सम्पत्तिका भी ।’ पर उसका भाग्य-भानु किस अलौकिक आकाशमें चमकनेवाला है, यह किसीको क्या मालूम ! यद्यपि असमयमें पिताके परलोकगत होनेसे प्रयागदत्तजी लौकिकी-वैदिकी

विद्याओंके अधिकारी नहीं हो सके; परन्तु सब विद्याओंका चरमा चेतना ब्रह्मविद्याका मधुर फल तो उन्हें प्राप्त ही हो गया। और साक्षर भी हो ही गये थे। यद्यपि पढ़नेमें उनका मन नहीं लगता था तथापि कुशाम्रबुद्धि होनेसे अल्प कालहीमें उन्होंने सारखत, अमरकोश और मुहूर्तचिन्तामणि भी पढ़ ही ली। फिर तो दूसरा ही रंग चढ़ गया। अस्तु, कन्यादानेच्छु पण्डितजीको प्रयागदत्तजीने कोरा जवाब दे दिया। उनके प्रस्तावसे वे घबरा भी उठे और अब अयोध्याको चल पड़े। चाहे वैसे दो दिन बाद ही जाते लेकिन अब वे कहाँ रुकते हैं!

श्रीअयोध्याके पथपर पर रखते ही प्रयागदत्तजीकी दशा ही निराली हो गयी। ऐसी उतावली हुई कि कैसे वे जल्द-से-जल्द वहाँ पहुँच जायें।

मानसननिदनी ( सरयूजा ) में स्नान करके परापुरी आननिदनी ( श्रीअयोध्या ) की पावन भूमिकामें प्रयागदत्तजीने प्रवेश किया। उषाइवीने आती की। दक्षिणानिलने छल बरसाये। पहले वे मणिकूटके उसी स्थलविशेषपर सीधे पहुँचे, जहाँ उनके बहिन-बहनोई मिले थे। कुछ देर वहाँ बैठे। पर उनके मिलनेकी ऐसी धुन उन्हें सवार थी कि विश्राम करनेके लिये भी अवकाश नहीं था। कुञ्जों और झाड़ियोंमें चारों ओर उन्हें ढूँढ़ते फिरे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पूर्वपरिचित बाबाजी श्रीत्रिलोचन सामीकी ओर निकल गये। महात्माजीने इन्हें पहचाना और प्रेमपूर्वक खागत किया। विश्राम कराया। इनकी विहूलता शान्त करनेके लिये उन्होंने अनेक

भगवद्रहस्यकी बातें कहीं, पर उससे वह और मी तीव्र हो गया। वियोगमें प्रियके चर्चाचारका यही परिणाम होता है।

धीरे-धीरे स्थामीजीने अपने अपूर्व सत्सङ्गके प्रभावसे उन्हें शान्त और सावधान किया। फिर कुछ भोजन कराया।

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रयागदत्तजी श्रीत्रिलोचन स्थामीजीके चरणोंमें लोट गये। स्थामीजीने उन्हें वात्सल्यपूर्वक उठाकर बैठाया। महात्माजीमें उनकी श्रद्धा आकर्षित हो चुकी थी—जो प्रिय पथका सहायक होता है वह स्वभावतः श्रद्धेय तथा प्रेय हो जाता है। स्थामीजीसे उन्होंने वैराग्यदीक्षाके लिये प्रार्थना की। सद्गुरुने उमड़ती हुई श्रद्धाके उसी मुहूर्तको उपयुक्त समझा और दीक्षा दे दी। लँगोटी-अँचला प्रदान किया। प्रयागदत्तजी अब प्रयागदास-जी हो गये। राजकुमार राजवेषमें राजसिंहासनपर बैठ गया। हीरा खरादा जाकर स्वर्णभूषणमें जटित हो गया। सिद्ध गुरु और सिद्ध शिष्य। मन्त्रराजकी कलाओंसे हृदयकमलकी पंखड़ियाँ खेलने लगीं। हृस्य खिल गया। चक्र सञ्चालित हो गये, ज्योति जगमगा उठी—जैसे शक्तिकेन्द्र ( Power House )से यकायक ब्रिजलीकी सब बत्तियाँ जल उठती हैं।

कुछ रात गये प्रयागदासजीकी दशा कुछ ऐसी चढ़ी कि वे सोते ही उठ पड़े और बन-बीहड़ोंमें जहाँ-तहाँ घूमने लगे। फिर तो यही रंग-ढंग रहा। जिधर निकल गये उधर ही निकल गये। खड़े हैं तो खड़े ही हैं, चल रहे हैं तो चल ही रहे हैं—न जाने कहाँ जा रहे हैं! न जाने क्या-क्या देखते हैं! न जाने किससे

क्या कहते हैं ! दिन-दिन और रात-रात इसी दशामें ब्रात रही हैं । न खानेकी सुध, न पीनेकी विन्ता, न सोनेकी परवा । अखण्ड योगनिद्रा और दिव्य स्थान । जाप्रतकी भूमिका और तुरीयके दृश्य । देह अपने रास्ते और देही अपने । किसीने खिला दिया तो खा लिया और पिला दिया तो ( पानी ) पी लिया । कोई-कोई प्रेमी उन्हें अपने हाथसे भी खिला दिया करते थे और इसमें वे बड़े सुखका अनुभव करते थे । परमहंस प्रयागदासजी भी बच्चोंकी तरह चुपचाप खा-पी लिया करते । लड़के उन्हें छेड़ा भी करते और न जाने किसने सिखला दिया था कि सब उन्हें 'मामा-मामा' कहने लग गये । केश बिखरे हैं, शरीरपर धूल पड़ी है और आँखें चढ़ी हुई हैं । लक्ष्मीजीके बन्धु होनेसे आकाशमें चन्द्रमा ही लड़कोंके मामा थे; अब भूनन्दिनीके भ्राता होनेसे ये दूसरे मामा भूतलपर भी हो गये । उनके प्रेमोन्मादके लक्ष्यसे यदि हम उन्हें भारतीय मजनू कहें तो कोई अनौचित्य न होगा । भाई मजनू यदि लैलाके आशिक थे तो प्रयागदासजी अवध-छैलाके । दशा एक थी, दिशा भिन्न । एकके प्रेमका आलम्बन प्राकृत था, तो दूसरेका दिव्य । दोनोंकी तन्मयता और एकाग्रता इतनी बढ़-चढ़ गयी थी कि देह और बुद्धि तथा अहङ्कारको भी पार करके वृत्ति केवल अपने ध्येय और प्रेममें ही स्थित थी । जैसे सर्वदेव-नमस्कार श्रीहरिके प्रति जाता है, वैसे ही सबका सत्य प्रेम भी परतः रूपसे भगवान्‌हीको पहुँचता है । हृदयदेशवासी वह परम प्रियतम ही प्रेमदेव है । किसीके प्रति भी किया हुआ सत्य एवं शुद्ध प्रेमको वही प्रहण करता है और तत्त्वावनानुसार फल देता है ।

प्रेमका कुछ तत्त्व ही ऐसा दिव्य है कि वह जिस हृदयमें विकसित होगा, उसे दिव्य ही बना देगा और दिव्य नायक पुरुषोत्तमका ओर भी कभी-न-कभी खींच ही ले जायगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। प्रेमी हृदयको भगवान् खयं खींच लेते हैं, चाहे वह कहाँ हो। वे उसके बड़े गाँहक हैं। ऐसे रत्नोंका वे बड़े चावसे संग्रह करते हैं। क्रीडाशील राजकुमार ही टहरे। अस्तु, परमहंस प्रयागदासजी-जैसे प्रेम-पागल लोकके कौतूहलके विषय बनते ही हैं और लड़के भी मनचले तथा कौतुकप्रिय होते ही हैं। अतः जब कभी वे आवादीकी ओर निकलते थे, तब बालक वृन्द 'मामा-मामा' कहते पीछे पढ़ जाते थे। परमहंस मामा तो प्ले परमहंस ही थे, मत्त गजेन्द्रकी तरह झूमते हुए घूमते रहते थे।

क्यों उसे कोई छेड़ता है, उसका वह दीवाना है।  
 दुँहृता फिरता उसे, अन्दाज़ सव शैदाना है॥  
 है परोशाँ जाँफिराँ आवारा-सा नाकारा-सा,  
 बेताव-सा बेख्वाव-सा बेआव-सा बेदाना है।  
 इश्कका मारा हुआ वह हो गया सौदाई है,  
 रोता कभी, गाता कभी है और कभी खन्दाना है।  
 है खुदाई अपनी मिटा दी, हस्ती<sup>१</sup> अपनी दी है खो,  
 उस जमाले-बेमिसाले-शामाका परवाना<sup>२</sup> है।  
 जाँनिसारी<sup>३</sup> उसकी, उसकी दिल-फिगारी<sup>४</sup> देख लो,  
 हो रहे हैं चश्म<sup>५</sup> चश्मये-अद्वक<sup>६</sup> दिल दर्दाना है॥

---

१-दंग। २-आसक्त प्रेमियोंका-सा। ३-विहृलप्राण। ४-उन्मत्त, पागल। ५-हँसता-सा। ६-अहंकार। ७-अस्तित्व। ८-अनुपमेय सौन्दर्यशील। ९-दीपक। १०-गतङ्ग। ११-प्राणोत्सर्ग। १२-हृदय-विदीर्णता। १३-नेत्र। १४-अश्रुखोत्त।

हो रहा है मह्दूं कैसा वह तसव्वरे-यारमें  
क्या खबर कब शाम होती, कब सहरै नूरानी है।  
प्यारेका प्यारा, सितारा आँखोंका उसकी वह है,  
मत कोई उसको कहे कुछ, अपना वह पगानी॥  
कहनेकी आदत-सी है कुछ, गरजे कह आता नहीं,  
तज्ज्ञ-खयाले 'यिन्दु' भी कुछ कुदरतीं शोरानी है॥

उनकी नशीलीं-रसीली आँखोंमें एक विलक्षण चमत्कार था।  
वह असलियतका लक्षण था। सब कुछ कोई कर ले, परन्तु वे आँखें  
कहाँसे लायेगा ? किसी कविने कहा है—

सौवर्णानि सरोजानि निर्मातुं सन्ति शिलिपनः ।  
तत्र सौरभनिर्माणे चतुरश्चतुराननः ॥

चाहे कोई शिल्पी सोनेका कमल बना ले, परन्तु उसमें  
सौरभ वह कहाँसे लायेगा ? उसकी समादन-क्रियामें तो विशाता  
ही कुशल है। श्रीमन्मानसकार महाराज कहते हैं—

उधरहिं विमल विलोचन ही के । मिट्ठहिं दोष दुख भव रजनी के ॥  
मूझहिं राम चरित मनिमानिक । गुपुत प्रगट जहँ जो जेहिं खानिक॥

उनकी आँखें वैसी ही थीं । बिना सिद्ध-सद्गुरु-कृपाके ये  
कहाँ प्राप्त हो सकती हैं ? इस सुषिके अन्तरमें, जो कोई अद्भुत  
रचना है, जिसमें उस क्रीडाशील नित्य नवल नायककी चित्र-विचित्र

१-तन्मय, सुध-विमोर । २-प्रिय ( सखा ) के ध्यानमें । ३-प्रभात ।  
४-ज्योतिर्मय । ५-आत्मीय, सगा । ६-नैतर्गिक । ७-कविजनोचित ।

दिव्य लीलाएँ हुआ करती हैं, जिनके प्रभावसे इस जगत्‌में हमें  
रमणीयताका आभास होता है,\* प्रयागदासजीकी आँखें उन्हें  
देखती रहती थीं। इसलिये कहते हैं कि उनकी आँखें अनोखी थीं,  
किसी अपार्थित रेडियमकी बनी हुई थीं। वैसी आँखें कहाँ होती हैं—

दिलवाले हैं हर चन्द जिगरवाले हैं।

यह सच है, निगाहोंमें असरवाले हैं॥

जो देखनेकी चीज़ थी, देखी न गई।

यों कहनेको हमलोग नज़रवाले हैं॥

परमहंस प्रयागदासजी सूक्ष्मरूपसे उसी निराली दुनियाँमें  
विचरते रहते थे और स्थूलरूपसे स्थूल जगत्‌में।

रमते रहते हैं सदा देखते लीला उसकी।

कल कहीं, आज कहीं, प्रात कहीं, रात कहीं॥

जहाँ-तहाँ उन्हें लीला-विहारीकी अनेक लीलाएँ दिखायी  
दिया करती थीं। कहीं कोई दृश्य खिचा हुआ है, कहीं कोई।

\* रमन बसंत रमनीयता प्रिया समेत,  
केलि कल कलनि को कियो सुप्रसार है।

चेतन आनन्द बन रस ही रसाल जहँ,  
भावन सुमन विकसितहू उदार है॥

धनुधर धीर रघुवीर 'विंदु' मनसिज,  
सीय रति जामें नित करत विहार है।

जाकी छाया माया माहिं भाँति भाँति प्रतिभाति,  
रमति रमावतिहुँ होय रागाकार है॥

कभी-कभी किसी चरितके लक्ष्यसे वे कुछ बक भी दिया करते थे । वह वाणी उनकी लोग दुहराया करते । एक बार उन्हें कहीं वन-यात्राकी लीला दृष्टिगोचर हुई । फिर तो वे अपने वहनोईजीसे नाराज हो गये और यह ब्रक्तव्ये फिरे—‘देखो, अपने आप गया और मेरी सुकुमारी बहिनको भी वन-बीहड़में लेता गया !’

अब वे पैसे बटोरने लगे । यदि कोई पैसा देता, तो अब वे ले लेते और रखते जाते । कुछ दिनोंमें जब काफी पैसे जमा हो गये, तब उन्होंने उनसे तीन जोड़े जूते बनवाये—जितने बढ़िया वे बनवा सकते थे । और तीन सुन्दर सुकोमल तोशक और इतने ही पलंग । तीनों पलंग ऐसे, एकसे छोटा एक बनवाया कि एकके पेटमें एक अँट सके । एकके ऊपर एक करके क्रमशः तीनों पलंग रख लिये । ऊपरवाले पलंगपर तीनों तोशक बिछाये और तीनों जोड़े जूते रखवे । उन्हें सिरपर रखकर वे ले चले । मस्तोंकी तो लीला ही निराली होती है, क्रीडाशीलके प्रेमी ही तो ढहरे ! उनसे घटकर क्यों हों ! अस्तु, मामाजी पहुँचे जाकर चित्रकूट । जहाँ-जहाँ रास्तेमें कुशा-कण्टक मिले, वहाँ-वहाँ वे बहनोईको कोसते गये । स्फटिकशिलाके परम रथ्य प्रदेशमें वे जाकर ढहरे । तीनों पर्यङ्क सुसज्जित कर दिये । छल भी तोड़-तोड़कर बिछा दिये । तीनों पर्यङ्कोंके तले तीनों जोड़े जूते भी रख दिये । कुछ देर उधर-उधर देखते रहे । फिर ज्ञाड़ियोंमें धुस-धुसकर खोजने लगे । कहीं भी कुछ आहट मिलती, कुछ खड़खड़ाहट होती, तो उधर ही वे उत्सुकतासे देखने लग जाते । आँखोंमें अश्रु और उमरे हुए रोम-कूपोंमें स्वेद-विन्दु भरे हुए हैं । विश्रामकी सुध नहीं,

रामकी बाठ शोब रहे हैं। जब इधर-उधर कहों पता नहीं चला, तब यह वक्ते हुए मन्दाकिनीकी ओर लौटने लगे—‘देखो, छिप गया न, जान गया कि प्रयागदास आ गया। अच्छा, छिपो……’। यहाँ आकर देखा कि तीनों पर्यङ्कोंपर तापस-वेषमें त्रिमूर्ति श्रीराम-लक्ष्मण और श्रीजनकनन्दिनी विराजमान हैं। फिर तो आनन्दका समुद्र ही उमड़ पड़ा। विहलतापूर्वक बोल उठे—‘तुम लोग कहाँ थे, कब आये ? मैं तो तुम्हें खोजता फिरा।’ फिर दौड़कर सबके चरणोंमें जूते पहनाये। रामजीसे बोले—‘अजी, इस जंगलमें तुम क्यों चले आये ? और मेरी सुकुमारी बहिनको भी लेते आये ! इस वन-ब्रीहड़में तुमलोग कैसे रहते हो ?’

माताने कहा—‘भैया ! मैं ख्यां चला आयी हूँ, ये तो नहीं लाते थे।’

प्रयागदासजी बोले—‘अच्छा, तो हम भी तुम्हारे साथ-साथ रहेंगे और पलंग ले चला करेंगे।’

भक्तभावन भगवान्‌ने कहा—‘भाई ! हमारी वन-यात्राका ऐसा नियम है कि हम तीन ही साथ रहते हैं। चौथे किसीको साथ नहीं रखते। हम पलंगपर भी नहीं बैठते। यह तो तुम्हारी रुचि रखनेके लिये अभी बैठ गये हैं। अब तुम इन्हें ले जाओ और अपनी सेवामें रखो। इससे हमें अपने उपभोगसे अधिक सन्तोष होगा।’

माता बोली—‘भैया ! तुम तनिक भी चिन्ता न करो। हम बड़े सुखसे वनमें रहते हैं। सब वनशासी हमारी सेवा करते रहते

हैं। कोई कष्ट नहीं होने पाता ! मुझे तो वन बहुत सुहावन लगता है। हमलोग फिर मिलेंगे ।'

क्या करते ! फिर उसी तरह सिरपर बै ही खाट और उसके सब ठाट रखवे चले। एक दिन बेचारे विश्राम भी नहीं करने पाये, उलटे पाँव लौटना पड़ा। लक्ष्मणजी ऐसा सुन्दर अवसर भला क्यों चूकने लगे। उन्होंने साले साहबसे कहा—‘प्रयागदासजी ! हम भी बैठ लें ! हमें भी ले चलोगे !’ ‘प्रयागदासजी बड़े प्रसन्न हुए। बोल उठे—हाँ-हाँ, चलो सब लोग चलो ।’ सरकारने कहा—‘प्रयागदासजी ! तुम जाओ । ये ऐसे ही कहते हैं ।’ बेचारे रह गये। बड़बड़ते हुए चले। अपना रिश्ता उलटकर गाली देते हुए बकने लो—‘देखो, चलना-बलना कुछ नहीं, मुझसे यहाँ करता है। किसीने कुछ नहीं किया । ये सब आप ही बनमें आये हैं, सोनेका महल काटता है, वन बीहड़ अच्छा लगता है। बहिन तो भोली-भाली है, साथ-साथ चली आयी । जो वह कहता है, वही करती है। जंगलमें हरे-भरे पेड़-पल्लव और पंछी-हिरन देखती है, बस जानती है, वन बड़ा सुहावन । जब देखेंगी बाघ तब न जानेगी ! देखो न काँटों-कुशोंमें उसे लिये फिरता है। बड़े नेमी बने हैं, पलंगपर नहीं बैठेंगे ! मुझे भी साथ नहीं लिया । जान गया कि इसके साथ रहनेसे इसकी बहिन सचेत हो जायगी । अयोध्या लौटनेको कहेगी । हैं वड़ा चतुर………वह छोय भी वड़ा खोटा है, कहकर नहीं चला ।’ इत्यादि बकते-झकते प्रयागदासजी जाने लो । कौतुकप्रिय कृपालु भगवान् प्रिया-अनुज समेत मुसकराते रहे ।

मन्दाकिनी-स्नान करके जैसे प्रयागदासजी अपना बोझ उठाकर चले, वैसे ही वे श्रीअयोध्याजी पहुँच गये। उन्हें उस समय तो यही मालूम हुआ कि वे पैदल चलकर ही आये हैं, परं पीछे जब ( अनुभवसे ) जान गये, तब कहने लगे—‘देखो, रहने भी नहीं दिया और उठाकर फेंक दिया।’ कई दिनोंतक यही बकते रहे। फिर दूसरा दृश्य खींचा और उसकी भावनामें विभोर हो गये। दिन-रात उनका यही हाल था।

श्रीअयोध्याजीमें चित्रकूटजीसे आकर एक नीमके पेड़तले उन्होंने अपना आसन जमाया। जैसा भगवान् ने कहा था, उन्होंने थीक वैसा ही किया। खाट विठ्ठायी, उसपर तोशक, उसपर आपर्ण्य आप। अपनी एक बाणीमें उन्होंने इसका वर्णन भी किया है—

नीमके नीचे खाट बिछी है, खाटके नीचे करवा।

प्रागदास अलमस्ता सोवे, राम-ललाको सरवा॥

वह प्रसिद्ध पथ भी इन्हींका है जिसका अन्तिम चरण यह है—

प्रागदास प्रह्लदवा कारन रघवा है गयो बघवा।

इसी तरहकी उनकी मस्तानी अटपटी बाणियाँ होती थीं। ग्राचीन अयोध्यावासी सजन कभी-कभी कहा करते थे और उनके विचित्र चारु चरित्रोंकी चर्चा किया करते थे।

परमहंस मामा प्रयागदासजीको हुए चार-पाँच पांडियाँ हुई हैं। लगभग डेढ़ या पौने दो सौ वर्ष हुए होंगे।

## भक्त शङ्कर पण्डित

गण्डकीके पवित्र तटपर एक गाँवमें भारद्वाजगोत्रीय भक्त शङ्कर पण्डितका घर था। घरमें श्रीशालग्रामजीकी पूजा थी। बड़े तड़के उठकर भक्त शङ्करजी स्नान-सन्ध्यासे निवृत्त हो ठाकुरजीकी पूजामें बैठते। विधिवत् पूजा करके भगवान्‌का ध्यान करते हुए एक पहरतक एकासनसे बैठे हुए षडक्षर ( ॐ रामाय नमः ) मन्त्रका जाप करते। फिर तर्पण करते और बलिवैश्व करके घरसे बाहर निकलते। गाँवके बाहर एक पुराने पीपलके पेड़के नीचे शिवालय था। शङ्करजी सीधे वहाँ जाकर शिवजीका पूजन करते। शङ्करजी अनन्य रामभक्त थे परन्तु शिव और राममें वे भेद नहीं मानते थे, बल्कि शिवपूजाके बिना उनकी रामपूजा अपूर्ण ही रह जाती थी। फिर घर लौटकर भोजन करते और ठीक समयपर पाठशाला पहुँच जाते।

गाँवमें संस्कृतकी वही एक पाठशाला थी। गाँवके ठाकुर जगपाल बड़े धार्मिक थे, उन्होंने ही इस पाठशालाकी स्थापना की थी। दस विद्यार्थियोंके भोजनका प्रबन्ध था। पंद्रह दिनका सीधा प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमाको ठाकुरके घरसे आ जाता। जगपालजीके मरनेके बाद उनके लड़के कुशलपाल गाँवके ठाकुर हुए। ये स्वभावसे अश्रद्धालु थे। विलासी भी थे। परन्तु पिताकी स्थापित की हुई पाठशालाको उठानेकी इनकी हिम्मत नहीं होती थी। छोटे भाइयोंका, गाँवके लोगोंका और खास करके बूढ़ी माताका दर

था। जगपालजीके जमानेमें शङ्कर शर्माका जो आदर था, वह तो अब नहीं रहा, परन्तु उनके काममें कोई दखल भी नहीं देता था। सात रुपये मासिक और रोज एक सीधा उन्हें मिल जाता था। सदाके नियमानुसार शर्माको सन्ध्या करनेके समयसे एक घंटा पहले शङ्करजी पाठशालासे चल देते। और गाँवके बाहर तालाबपर जाकर शौच-स्नान-संध्या और शिवपूजन करते। रात पड़े बर लैटे। उनके सारे काम बड़ीके काँटेकी तरह नियमित होते।

भक्त शङ्करजी बड़े ही विश्वामी, सदाचारी, सात्त्विक प्रकृतिके मन्त्रोषी ब्राह्मण थे। वे झूठ बोलना और दम्भ करना नहीं जानते थे। खुशामद करनेकी कलुषित कलासे भी सर्वथा अनभिज्ञ थे। सरल और स्पष्टमात्री थे। नियमित कार्य और भगवान्‌का भजन यही उनका दिनभरका काम था। पत्नी रमावाई भी बड़ी साध्वी थी। एक पुत्र था जो गाँवसे दूर एक शहरमें पण्डितार्डिका काम करता था, वह भी बड़ा साधुस्वभाव था।

माता जीवित रही तबनक तो कुछ सङ्कोच था। उसके मरने-पर कुशलपालने स्वतन्त्र होकर विलासितमें अपने हिस्सेका सब धन छूँक डाला। अब उसकी गीध-दृष्टि भाइयोंके धनपर पड़ी। वह तरह-तरहके उपाय सोचने लगा। कुशलपालके तीनों छोटे भाई शङ्कर पण्डितपर बड़ी श्रद्धा रखते थे। शङ्कर पण्डित विना काम कभी किसीके घर नहीं जाते थे, परन्तु पिताके द्वारा विशेष-रूपसे आदर पाये हुए शङ्करपर उन लोगोंको बड़ा विश्वास था। इसका एक कारण यह भी था कि जगपाल मरते समय कह गये थे

कि शङ्कर पण्डित-जैसे महात्मा अपने गाँवमें और कोई नहीं हैं। इनकी भक्ति करना और इन्हें मुझसे बढ़कर समझना। कुशलपाल-को छोड़कर शेष तीनों भाई पिताके इन वचनोंको भूले नहीं थे।

कुशलपालने एक जाल सोचा। उसने पिताके नामसे एक झूठा दस्तावेज बनाया और बड़ी लूटीसे उसपर जगपालके हस्ताक्षर भी बना लिये। पिताके हस्ताक्षरोंकी उसने ऐसी निपुणतासे नकल की कि देखनेवालोंमें किसीको भी यह सन्देह नहीं हो सकता था कि यह हस्ताक्षर जगपालका नहीं है। उस दस्तावेजमें पंद्रह लाखके सोनेमें तीन हिस्से कुशलपालको दिये गये थे और एक हिस्सेमें छोटे तीनों लड़कोंके लिये तीन भाग करनेकी बात थी। जगपालको सूर्यकी उपासना करनेसे एक नींवमें पंद्रह लाखका सोना मिला था। उसमेंसे दस लाख रुपयेसे सूर्यभगवान्‌का एक सुन्दर मन्दिर बनानेका उनका विचार था और पाँच लाख रुपये अपने घरके काममें लेनेका। परन्तु इस मनोरथके पूरा होनेके पूर्व ही उनका देहान्त हो गया। पंद्रह लाखका सोना यों ही पड़ा रह गया। इन बातोंका शङ्कर पण्डितको पूरा पता था। चारों लड़के भी इसको जानते थे और कुशलपालको छोड़कर जगपालके शेष तीनों लड़के चाहते भी थे कि मन्दिर जल्दी बन जाय, परन्तु कुशलपाल टालता जाता था। एक दिन जब भाईयोंने बहुत जोर दिया तब कुशलपालने कहा, ‘भाई ! सच्ची बात तो यह है कि पिताजीका मरते समय विचार बदल गया था। उन्होंने मन्दिर बनवानेकी इच्छा छोड़कर सारा सोना मुझे देना चाहा था, परन्तु जब मैंने नहीं लिया और कहा कि या तो मन्दिर ही बने या मेरे

भाइयोंको बराबर हिस्सा मिले—तब उन्होंने एक दस्तावेज मुझको लिख दिया था, वह मेरे पास है !’ बड़े भाईकी इस बातको सुनकर उन्हें बड़ा आश्र्य हुआ । वे भाईके स्वभावको जानते थे, इसलिये उन्हें पूरा विश्वास नहीं हुआ । उन्होंने दस्तावेज देखना चाहा । उसने लाकर दिखला दिया । तीनों भाइयोंने आश्र्यचकित नेत्रोंसे उसे पढ़ा और पिताजीके हस्ताक्षर देखकर कहा कि पिताजी जो कुछ कर गये हैं उसमें हमलोगोंको कुछ भी कहना नहीं है । उनके हस्ताक्षर भी हम पहचानते हैं; परन्तु हमसे भी अधिक उनके पास रहनेवाले और उनके हस्ताक्षरोंको पहचाननेवाले हैं शङ्कर पण्डित । वे कह देंगे कि ये हस्ताक्षर पिताजीके हैं तो हम इस बातको मान लेंगे ।

भगवान्‌की इच्छा कुछ और ही थी । कुशलपालके मुँहसे निकल गया ‘शङ्कर पण्डितके सामने ही तो दस्तावेजपर पिताजीने हस्ताक्षर किये थे, वे कहेंगे क्यों नहीं ?’ ‘हाँ, हाँ, तब फिर बात ही क्या हैं, उसी समय दस्तावेजके अनुसार आप अपने हिस्सेका सोना ले लीजियेगा ।’—तीनों भाइयोंने कहा ।

कुशलपालके मुँहसे बात निकल तो गयी, परन्तु अब उसे बड़ी चिन्ता लगी । उसने सोचा, ब्राह्मण बड़ा जिदी और निलोभी है । उसने न कहा तो मेरी बात भी जायगी और आगे बढ़नेपर सोना भी शायद मुझे न मिले ।’ चोरके चित्तमें तो डर रहा ही करता है । कुशलपाल एक बार काँप गया । फिर विचार किया, है कौन-सी बात ! सोनेकी मारसे देवताओंके दिमाग भी दुरुस्त हो जाते हैं, फिर इस मामूली ब्राह्मणकी तो बात ही क्या है । ‘पूरी

जाती देखिके बुध आधी ही लेय'—जहाँ पूरी रोटी जाती हो, वहाँ बुद्धिमान् आधी ही ले लेते हैं। ब्राह्मणके सामने सोनेका ढेर लगा दूँगा फिर देखूँगा, कैसे वह 'नहीं' कहता है। इसपर भी नहीं मानेगा, तो मेरे शरीरका बल तो कहीं चला नहीं गया है। बच्चूको ऐसा मोहनभोग खिलाऊँगा कि वह तो क्या उसके पुरखे मेरे मनकी करने लगेंगे। इस कुविचारसे कुशलपालको एक बार साहस हो आया। उसने कहा, 'अच्छी बात है, कल पण्डितजीको बुलकर पूछ लेंगे।'

कुशलपाल घर लौट आया पर उसे चैन कहाँ ! वह कुछ खा-पीकर शङ्कर पण्डितके घर गया और बड़ी नम्रतासे दण्डवत् करके उनके चरणोंमें बैठकर कहने लगा—'पण्डितजी ! आज एक कामसे आपको कष्ट देने आया हूँ। आप तो मेरे लिये पिताजीके तुल्य हैं। आपको कष्ट न देता, परन्तु काम ऐसा ही था, इसीलिये निवेदन करनेको आना पड़ा। आपको माद्दम होगा, पिताजीको पंद्रह लाखका सोना मिला था'—

'हाँ, हाँ, माद्दम क्यों नहीं है, उसमेंसे दस लाखसे तो वे मन्दिर बनानेवाले थे। उनका स्वर्गवास हो गया तो क्या है, आप-लोग हैं ही, मन्दिर बनवा दीजिये ! मैं अच्छी साझत देख दूँगा।'—शङ्कर पण्डितने बीचमें ही बात काटकर कहा।

कुशलपाल बोला—'मन्दिरकी बात तो सही है, पहले ऐसी ही बात थी; परन्तु पीछे पिताजीका विचार पलट गया था। मेरे मने करते-करते उन्होंने यह दस्तावेज लिख दिया था, इसे आप पढ़िये।' यों कहकर कुशलपालने दस्तावेज पण्डितजीके सामने डाल दिया।

पण्डितजीने तिरळी नजरसे कुशलपालके चेहरेकी ओर देखकर दस्तावेज उठा लिया और बड़े गौरसे पढ़कर बोले—‘कुशलपालजी ! हस्ताक्षर तो उनके से ही हैं; परन्तु निश्चय ही यह दस्तावेज जारी है। किसी धूर्तने उनके हस्ताक्षर बना लिये हैं।’

‘शिव ! शिव ! पण्डितजी ! आप यह क्या कह गये ! वह धूर्त तो फिर मैं ही हुआ। क्योंकि दस्तावेज लिखा हुआ है मेरे हाथका और है भी मेरे ही पास तथा सौभाग्य या दुर्भाग्यवश इसमें धनका अधिक हिस्सा भी मुझको ही दिया गया है।’

‘आप ही होंगे ! मुझे तो कुछ पता नहीं। अन्तर्यामी मन जानते हैं।’

‘तब तो वह आप ही अन्तर्यामी हो गये। मैंने समझा था पण्डितजी ठीकसे बातें करेंगे, सचाईका आदर करेंगे, पर आप तो मुझको ही जालसाज बताने लगे।’

‘मैंने तो आपको जालसाज नहीं कहा, परन्तु आपका दाद अपने-आप ही आपके मुँहसे बोल रहा है। ठाकुर साहेब ! परमात्मा-का ढर रखिये। धन साथ नहीं जायगा। मनुष्य मोहवश धनमें सुखकी कल्पना कर उसके लिये अन्याय और असत्यका आश्रय लेता है, अन्तमें धन यहीं-का-यहीं रह जाता है। जैसे आपके पिता सब यहीं छोड़ गये, वैसे ही आप भी सब छोड़कर मर जायेंगे। एक कौड़ी भी आपके साथ नहीं जायगी। जीवनभर जलेंगे और मरनेपर अनन्त नरकोंकी आगमें जलना पड़ेगा। फिर क्यों थोड़े जीनेके लिये इतना बड़ा पाप पल्ले बौंधते हैं।’

‘पण्डितजी ! यह तो आप ठीक ही कहते हैं, पिताजी मर गये, मुझको भी मरना है। इस वातको मैं भी समझता हूँ। पर आप मुझको झूटा समझते हैं, यह आपकी भूल है। सचमुच ही पिताजी दस्तावेज करके मुझको तीन हिस्सेका सोना दे गये हैं। आप नाराज न हों तो मेरी एक सुनिये। आप यदि एक वातमें मेरी सहायता करें तो मैं भी आपकी सेवासे नहीं चूकूँगा। मैं ऐसा कृतज्ञ नहीं हूँ जो आपके गुणोंको भूल जाऊँ। सोनेका आधा हिस्सा आपका होगा। फिर आप उससे भगवान्‌का यथेष्ट सेवा कीजिये और अपने बाल-बच्चोंको सदाके लिये सुखी बना दीजिये।’

‘एकुर साहेब ! अब आप सीमासे बाहर जा रहे हैं। मुझे सोनेका लोभ दिखाकर अपने पापमें शामिल करना चाहते हैं। ( कुछ उत्तेजित होकर ) क्या तुम मुझसे यह कहलाना चाहते हो कि तुम्हारा दस्तावेज सच्चा है ? यह हर्मिज नहीं होगा। मुझे धन प्यारा नहीं है, वर्म प्यारा है। मेरे टाकुरजी चोरीके धनकी सेवा स्थीकार नहीं करते। बाल-बच्चोंको सुख उनकी गाढ़ी कमाईके पैसेसे होगा, पापके सोनेसे नहीं। इससे तो बुद्धि विगड़ेगी जो न मालूम कितने भयानक द्रुःखोंका कारण बनेगी ! मुझे यह सोना नहीं चाहिये। अब फिर ऐसी बात मुँहसे मत निकालना, नहीं तो गरिणाम बहुत बुरा होगा।’

‘जमाना ही बुरा है, होम करते हाथ जलता है। भिखारी श्राहणका अभिमान तो देखो, सोनेसे मानो इनको बड़ी वृणा है ! मुझे परिणामका डर दिखाते हैं !’—कुशलपालने झल्लाकर कहा।

‘कुशलपाल ! मैं भिखारी हूँ, पर तुम्हारी तरह वईमान नहीं हूँ। मेरे घरमें सोना नहीं है, पर मैंने सोनेके लिये ईमान कभी नहीं

खोया । मैं फिर भी कहता हूँ तुम कुछ तो भगवान् से डरो । भैया ! बहुत हो गया । अब अपने घर जाओ और इस पापमय विचारको छोड़ दो !'

'शङ्कर पण्डित ! अब मैं समझ गया, सीधी अँगुलीसे धी नहीं निकलेगा । पिताजीने तुम्हें बहुत सिर चढ़ा दिया था, उसीका यह नतीजा है । खैर, मैं तो जाता हूँ; परन्तु याद रखना, मेरा नाम कुशलपाल है ।'

'भाई ! इतना गर्व क्यों करते हो ? मेरा तुम क्या बिगड़ेगे ? तुम्हारा क्रोध तुम्हारे ही लिये ग्रातक होगा । भगवानके राज्यमें अन्याय नहीं हो सकता, सब अपना-अपना कर्मफल भोगते हैं । मैं यदि निरपराध हूँ तो तुम मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकते । मेरे 'कोसलपाल' भगवान् श्रीरघुनाथजीके सामने तुम-जैसे क्षुद्र कुशलपाल किस गिनतीमें हैं ? मेरा विश्वास है वे नित्य मेरी सहायता करते हैं, सदा मेरे साथ रहते हैं । वे मुझे अवश्य बचायेंगे । यदि मेरे किसी पूर्वकर्म-का भोग तुम्हारे हाथ भोगा जायगा तो उसमें भी मेरा मङ्गल ही होगा !'

'अच्छा देखा जायगा ! मैं जाता हूँ ।'

'जाओ, भाई ! ईश्वर तुम्हारा भला करे, तुम्हें सुबुद्धि दे ।'

'मैं तुम्हारे ईश्वरसे भलाई और सुबुद्धिकी आशा नहीं रखता अपनी भलाई मैं आप ही अपनी बुद्धिसे कर सकता हूँ । तुम्हारे-जैसों के आशीर्वादकी मुझे आवश्यकता नहीं है । तुम अपने ही लिये अपने भगवान् से प्रार्थना करो ।' इतना कहकर निराश होकर कुशलपाल वहाँसे चला गया । उसके मनमें शङ्कर पण्डितसे बदला लेनेकी आग जल उठी । पापसे पाप पैदा होता है । उसने घर जाते

ही एक तेज छूरा जेवरे ढाल लिया और शङ्करको मारनेकी धातमें  
फिरने लगा । प्रतिहिंसाके पापने उसकी बुद्धिका नाश करके उसको  
पागल-सा बना दिया ।

सन्ध्याका समय है । चारों ओर अँधेरा छाया है । कृष्णपक्षकी  
चतुर्थीका दिन है । सुनसान जंगलका रास्ता है । इधर-उधर सियार  
हुँआँ-हुँआँ कर रहे हैं । दूरसे कुत्तोंका भोंकना सुनायी देता है ।  
शङ्कर पण्डित सदाकी तरह भगवान्‌के पवित्र नामोंका गान करते हुए  
निश्चिन्त मनसे शिवजीके मन्दिरसे घरको लौट रहे हैं । अचानक  
कुशलपालने उनका हाथ पकड़ लिया और छूरा छातीमें भोंककर वह  
भाग चला । शङ्कर पण्डितके हृदयसे खून वहने लगा और वे ‘हा  
राम ! हा रघुवर !’ कहते हुए बेहोश होकर गिर पड़े ।

दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा, वे किसी बड़े ही सुरभ्य दिव्य  
बगीचेमें हैं, पास ही सुन्दर जलका विशाल सरांवर है, जिसके  
चारों ओर नाना प्रकारके विचित्र और सुगन्धित पुष्प खिल रहे हैं ।  
अनेकों दिव्य पक्षी अपनी सुन्दर स्वर्गीय भाषामें गा रहे हैं । चारों  
ओर अनोखा प्रकाश छाया है । विशाल पीपलका एक सुहावना वृक्ष  
है । उसीके पास एक मनोहर सिंहासनपर भगवान् श्रीराम जनकनन्दिनी  
श्रीसीताजीसहित अपने दिव्य वस्त्रालङ्घारोंसे विभूषित विराजमान हैं ।  
श्रीभगवान्‌की मनोहर छवि देखते ही बनती है । श्रीलक्ष्मण और  
भरत चौंवर ढुला रहे हैं । शत्रुघ्न हाथमें जलकी झारी लिये खड़े हैं ।  
हनुमानजी भगवान्‌के चरण दबा रहे हैं । सामने दोनों ओर भक्तों  
की और संतोंकी सुन्दर पंक्तियाँ हैं, सभी बड़े सुन्दर स्वरोंमें भगवान्  
श्रीरघुनाथजीका स्तवन कर रहे हैं । शङ्कर पण्डित इस मनोहर और

दुर्लभ दृश्यको देखकर कृतकृत्य हो गये। उनके हृदयका बाव तो कभी दूमन्तर हो गया था। वे कभी भगवान्‌के चरणोंकी ओर निहारते और कभी मनोहर मुखचन्द्रकी छाँकी करते। स्तवन समाप्त होनेपर शङ्कर पण्डित प्रेमविहृल और आनन्दमग्न होकर भगवान्‌के चरणोंमें लोट गये। वे उस समय जिस परमानन्दके समुद्रमें निमग्न हो रहे थे, उसका वर्णन वाणीसे नहीं हो सकता। भगवान्‌का इशारा पाकर हनूमान्‌जीने उन्हें उठाया, वे उठते ही मारुतिकी छातीसे चिपट गये। उनकी आँखोंसे आनन्दके आँसुओंकी धारा वह रही थी, शरीर पुष्टिकित था। आनन्द हृदयमें समा नहीं रहा था। भगवान्‌ने कहा, 'नक्त शङ्कर ! मैं तुम्हारी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे जैसे दम्भ-हीन, सरलहृदय, निर्लोभी और विना किसी दिखावेके चुपचाप मेरी निष्काम सेवा करनेवाले सच्चे विरक्त भक्त मुझे परम प्यारे हैं। जाओ, मेरा चिन्तन करते हुए अभी कुछ समयतक पृथ्वीपर रहकर जगत्‌का कल्याण करते रहो। शीघ्र ही तुम मेरे धाममें आकर धन्य होओगे।'

शङ्कर पण्डित भगवान्‌की मधुर वाणी सुनकर निहाल हो गये, परन्तु भगवान्‌को छोड़नेकी वात उनके मन नहीं रुचा। पर प्रेम-मुघ्यताके कारण वाणी बंद थी, वे कुछ भी बोल नहीं सके। हाँ, आँखोंके गरम-गरम आँसू अवश्य ही यह बतला रहे थे कि वे भगवान्‌के चरणोंका छोड़ना नहीं चाहते !

भगवान्‌ने फिर कहा, 'तुम चिन्ता न करो, मेरा आदेश मानकर जगत्‌का कल्याण करो।' भगवान्‌के इतना कहते ही वह सारा दृश्य आँखोंके सामनेसे हट गया। शङ्कर पण्डितने अपनेको उसी सुनसान जंगलमें पड़े पाया, परंतु वे अब होशमें थे और उनका

यावं विन्दुकुल अच्छा हो चुका था। भगवान्‌की दयापर मुम्ख हुए शङ्कर पण्डित उठे और उस महान् दुर्लभ दश्यका मधुर स्मरण करते हुए वरकी ओर चले। थोड़ी ही दूर चले थे कि उन्होंने कुशलपालको जमीनपर पड़े देखा, उसके मुँहसे खून वह रहा था। चांदके उक्तियालेमें उसकी यह दृदशा देखकर शङ्कर पण्डितके मनमें बहुत दुःख हुआ। शङ्करने उसको उठाया और पासके कुएँसे जल लेकर उसका खून धोया और धीरे-धीरे उसे होश कराया। कुशलपाल शङ्कर पण्डितको देखकर एक वार तो डरा, परन्तु पीछे वह आनन्दमें भर गया। वह चरणोंमें गिर पड़ा और बोला ‘पण्डित-जी ! नैं बड़ा ही नीच अमागा हूँ, जीवनभर मैंन पाप किये, सब धन कँक दिया; अन्तमें धनके अभावमें मेरी नीच मति हो गयी, मैंने झूठ दन्तावेज बनाया, लोभवश उसपर पिताजीके जाली हस्ताक्षर बनाये और फिर भाइयोंसे कहा कि पण्डितजीके सामने ही पिताजी-ने हस्ताक्षर किये थे। मेरे साधुख्यभावके तीनों भाइयोंने इसपर विश्वास करके कहा कि पण्डितजी कह देंगे तो हम आपको तीन हिस्सेका सोना दे देंगे। मैं इसी उद्देश्यसे आपके पास गया था और ग्रेम दिखाकर डरा-धमकाकर आपसे झूटी गवाही दिलवाना चाहता था। परन्तु आप शुद्धान्तःकरण होनेसे मेरी जालमाजी पहलेसे ही जान गये। आपने दया करके मुझको समझाया, परन्तु मैं पापवुद्धि उल्टा आपसर क्रोधित होकर चला गया। फिर तो मैंने जो नीच कर्म किया, वह आप जानते ही हैं। मैं आपको छूरा मारकर मागा। तुरंत ही मुझे ऐसा दिखायी दिया, मेरे पीछे दो बड़े भयङ्कर पुरुष आ रहे हैं; मैं डर गया। उन्होंने मुझे पकड़ लिया और कहा ‘नराधम ! तुझको हम अभी मार डालते और सीधे नरकोंमें पहुँचाते, परन्तु अमार्शाल शङ्कर पण्डित वड़े ही भक्त हैं, वे हृदयसे तेरा कल्याण

चाहते हैं, तू उनके आशीर्वाद से सुरक्षित है। हमलोग उनके विपरीत कुछ कर नहीं सकते, इसीलिये तुझे श्रोडा-सा ही दण्ड देकर छोड़ देते हैं। खवरदार ! अब तू द्वेष और लोभको छोड़कर पवित्र हो जा ! नहीं तो आगे बड़ी दुर्दशा होगी।' इतना कहकर उनमें से एकने बड़े जोर से मेरे सिरमें एक वूँसा जमा दिया। उस समय मुझे जो भगवानक पीड़ा हुई उसे मैं ही जानता हूँ। परन्तु उन्होंने ऐसा करके मुझपर बड़ी ही कृपा की। उस मारसे मेरा मन शुद्ध हो गया। मैं अपने किये पर पश्चात्ताप करने लगा। मुझे अपने भाइयों से वेदमानी करनेका सूर्यमन्दिरका धन हड्डपनेकी इच्छा करनेका तो दुःख था ही; सबसे बड़ा दुःख मुझे आपको मारनेका था। मैंने समझा था कि आपके प्राण वचे नहीं हैं। मैं इसी अनुत्तापकी आगसे जलता-जलता उस घोर पीड़ाको सहता रहा। पिताजीके समय लड़कापनमें सुनी हुई एक कथा मुझे याद आ गयी। एक बार भगवानन् ने अपने पर्षदोंसे कहा कि—

'जो मेरो पूजा करता है परन्तु मेरे भक्तका अपराध करता है वह मानो मेरे पैरोंको पूजता हुआ मेरे गलेपर छुरी चलाता है। ऐसे पुजारीको घोर नरक-यन्त्रणा भोगनी पड़ती है।' \* इसके बाद ही

\* इसी आशयका सूरदासजीका एक पद है—

श्रीपति दुखित भगत अपराधे ।

संतन द्वेष द्रोहिता करके आरति सहित जो मोहि अराधे ॥

सुनो सकल बैकुंठ निवासी, साँची कहाँ जिन मानो खेदे ।

तिनपर कृपा करूँ मैं केहि विधि, पूजत पाँव, कंठको छेदे ॥

जन मॉं बैर प्रीति मोसॉं करि मेरो नाम निरंतर लैहैं ।

सूरदास भगवंत वदत याँ, मोहि भजें पर जमपुर जैहैं ॥

मेरे मुँहसे खून बहने लगा और मैं बेहोश हो गया । बेहोशीमें मैंने जो-जो भयानक दृश्य देखे, लोभी, दम्भी, दुराचारी, हिंसक और भक्तद्रेष्यियोंकी जैसी-जैसी भयानक दुर्दशाएँ देखीं तथा स्थयं भी जो दोर यन्त्रणाएँ सहीं, उनको याद करके अब भी मेरा कलेजा काँप रहा है । परन्तु यह सब देखकर और सहकर मैं पवित्र हो गया । मैं अब आपकी कृपासे होशमें हूँ और मेरी सारी पीड़ा मिट गयी है । आपकी कृपासे भगवान्‌का यह परम अनुग्रह मुझे प्राप्त हुआ । अभी आपको स्वस्थ देखकर तो मेरे हृदयमें आनन्द समा नहीं रहा है; बतलाइये, आपके प्राण कैसे बचे ?

कुशलपालकी करुण कहानी सुनकर शङ्कर पण्डित आनन्दमन्म हो गये । भगवान्‌की दया देखकर उनका हृदय कृतज्ञतासे भर गया । उन्होंने सोचा, भगवान् कवि किसपर किस तरह दया करते हैं, यह कोई नहीं जान सकता । इस बेचारे कुशलपालकी दुर्बुद्धिको दयामय भगवान्‌ने क्षणोंमें ही कैसे हर लिया । दुःखकी बात तो इतनी ही है कि मेरे कारण इसको इतनी पीड़ा सहनी पड़ी । यों सोचते हुए शङ्कर पण्डितने कहा—‘भाई कुशलपाल ! मेरे अपराधको क्षमा करना, मेरे कारण तुम्हें बड़ी साँसत सहनी पड़ी । अब तुम्हारा हृदय पवित्र हो गया, यह भगवान्‌ने तुमपर बड़ी कृपा की । मैं तो तुम्हारा बड़ा ही उपकार मानता हूँ । तुम मुझे छूरेसे नहीं मारते तो मैंने जो भगवान्‌की झाँकीका अपार आनन्द प्राप्त किया है, वह नहीं प्राप्त कर सकता । तुम ही मुझे भगवान्‌के धामका दर्शन करानेमें प्रधान कारण हो । मैं तुम्हारे इस उपकारका बदला कैसे चुकाऊँ ?’ इतना कहकर शङ्कर पण्डित गद्दद होकर रोने लगे ।

कुशलपाल उनः चरणोमें गिर पड़ा और उनकी चरण-भूतिको मस्तक-  
पर चढ़ाकर बोला—‘भगवन् ! आप धन्य हैं, मैं ऐसे हृदयवान्  
मुहुष्टके चरणोमें पड़ा हूँ, इसलिये मैं भी आज धन्य हो गया । पर  
आप मुझ पामरसे क्षमा चाहते हैं और मेरा उपकार मानते हैं,  
यह आपकी तो परम साधुता है, परन्तु मैं नीच इन शब्दोंको सुन रहा  
हूँ । यह मेरी कितनी अधमता है । पृथ्वी भी नहीं फट जाती कि  
मैं उसमें क्षमा जाता । मुझपर वत्रवात क्यों नहीं हो जाता । भगवन् !  
मैं महापार्पा नीच नारकी जीव हूँ । आप कृपाकर मुझे अपनाइये,  
अपना सच्चा शिष्य बनाइये ।’ यों कहकर कुशलपाल बड़े जोर-जोर-  
से पुकार-पुकारकर रोने लगा । सच्चे पश्चात्ताप, भगवत्कृपा और  
संतकी शुभ भावनासे उसका अन्तःकरण परम शुद्ध हो गया ।

शङ्कर पण्डितने उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और सच्चा  
अधिकारी जानकर उसे भगवान् रामका पठक्षर ( ॐ रामाय नमः )  
मन्त्र देकर कृतार्थ किया । कहना नहीं होगा कि उसी क्षणमें  
कुशलपालका जीवन ही पलट गया । उसने सारा धन भाइयोंको दे  
दिया । अपने उससे कुछ भी सम्पर्क नहीं रखा । भाइयोंने पिता-  
जीके इच्छादुसार दस लाखके मोनेसे मन्दिर बनवा दिया और शेष  
पाँच लाख भी धर्मकार्यमें लगा दिये । कुशलपालका जीवन भजनमय  
हो गया और अन्तमें शङ्कर पण्डितसहित वह भगवान्के परमधर्म  
साकेत लोकमें पहुँचकर कृतार्थ हो गया ।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय !

## भक्त प्रतापराय

भगवान्‌के सच्चे विश्वासी भक्त प्रेमपूर्वक निरन्तर भजन करते हैं; परन्तु भजनके बदलेमें कुछ भी चाहते नहीं। संसारके मुख-दुःखोंकी तो उन्हें परवा ही नहीं होती, स्वर्गसुखको भी वे तुच्छ समझते हैं। यहाँतक कि मोक्ष और साक्षात् भगवत्प्राप्तिका लोभ भी उन्हें भजनसे नहीं डिगा सकता। वे भजन करते हैं; क्यों करते हैं? इसका उनके पास जवाब नहीं होता; परन्तु यह निश्चित है कि भजन किये बिना उनसे क्षणभर भी रहा नहीं जाता। उनके लिये भजनका व्याग उतना ही असाध्य है, जितना जीवनके लिये प्राणों-का। वस्तुतः यह उदाहरण भी भक्तके द्वारा होनेवाले भजनकी तुलना नहीं कर सकता। यह तो समझनेके लिये एक संकेतमात्र है। जो लोग सांसारिक भोग-मुखोंकी प्राप्तिमें भजनका सुफल होना समझते हैं और इसीमें भगवत्कृपा मानते हैं, और सांसारिक विपत्तियों तथा कष्टोंमें भगवान्‌को भूल जाते हैं, कोसते हैं, उनकी अकृपा मानते हैं और कहीं-कहीं तो भगवान्‌की दया और उनके अस्तित्वतकपर मन्देह करने लगते हैं, वे वस्तुतः वडे ही दयनीय हैं। ऐसे लोग भजनके प्रेमी भक्त नहीं हैं, ये तो लेन-देन करनेवाले व्यापारी—उनमें भी अविश्वासीमात्र हैं। हमारे भक्तराज श्रीप्रतापराय-जी उपर्युक्त प्रकारके एक महान् विश्वासी भक्त थे। युवावस्थाके कुछ कालको छोड़कर इनके जीवनका मध्यकाल सांसारिक दृष्टिसे दुःख-मागरमें ही इबते-उतराते बीता, परन्तु ये सदा ही अपने आनन्दमें मग्न रहे। किसी भी दुःखकी ताकत नहीं हुई कि वह इनके द्विलिपर कुछ भी असर डाल सके।

भक्त प्रतापरायजी श्रत्रिय थे । इनके रूपज बहुत समयसे बंगालमें जा बसे थे । इनकी भाषा, वेश तथा चाल-चलनमें काफी बंगालीपन आ गया था; परन्तु खान-पान शुद्ध था । श्रीगोपालजीकी भक्ति तो इनकी मानो वैष्णवी थी । चारों ओर आमिषभोजी शक्ति-उपासकोंसे बिरे रहनेपर भी इनके परिवारमें वैष्णवताका मानो अखण्ड एकठत्र साम्राज्य था । पश्चिम बंगालके हरसोला नामक गाँवमें ये रहते थे । इनके पिताका नाम भानुराय और माताका नाम कुसुमी था । दोनों बड़े ही धार्मिक और भक्त थे । इनके पास जमीन थी और उसमें काफी अनाज होता था । पशुधन भी पर्याप्त था । कुछ महाजनीका काम करते थे । उचित व्याजपर आस-पासके गाँववालोंको रूपये दिया करते थे । अपनी शितिमें ये मस्त थे । घरकी आवश्यकताके अनुसार इनको किसी व्रतकी कमी नहीं थी । प्रतापराय इस भागवान् दम्पतिके एकमात्र लाडिले पुत्र थे । माता-पिता ही सन्तानके सबसे पहले गुरु होते हैं । बच्चोंका दुलार तो अवश्य ही करना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं करना चाहिये, जिससे उनमें बुरी आदत पड़े और आगे चलकर उसका बुरा फल उन्हें भोगना पड़े । प्रतापरायके माता-पिता इस विषयमें बड़े सावधान थे । दो बहिनोंके बीचमें प्रताप एक ही लड़के थे । माता-पिताके हृदयके परम धन थे, परन्तु उन्होंने उनमें एक भी बुरी आदत न पड़ने दी । माता-पिताकी शिक्षाके प्रभावसे वे सबेरे उठते, भगवान्‌का स्मरण करते, माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम करते, नहा-धोकर तुलसीका पौधा सोचते, घरमें ठाकुरजीके दर्शन करते, कुछ जाप करते, तब सबेरेका व्याद्ध करते । सबसे मीठा और त्रिनयके

साथ बोलते, हठ नहीं करते, माता-पिताके नामने कभी नहीं बोलते। प्रताप जैसे देखनेमें सुन्दर थे वैसे ही वट्ठिक उससे कहीं अधिक हृदयसे और बर्ताविमें सुन्दर थे। उनसे जो एक बार बात कर लेता, वही मुख्य हो जाता। माता-पिताने प्रतापमें कष्ट सहनेकी भी आदत ढाली थी। धूप-वर्षा सहना, जड़में ब्रिना कपड़के रह जाना, हाथसे सब काम कर लेना, बहिनोंसे ईर्ष्या न करना, कपड़-गहनेके लिये कभी न ललचाना, बहुत सादे और मोटे कपड़ पहननेमें आनन्द मानना, जीभके स्वाद और शरीरकी सजावठसे वृणा करना, शौकीनी विल्कुल न जानना और किसी भी कामके करनेमें न लजाना उनके खास गुण थे। वे कोई भी चीज अकेले न खाते, पहले अपनी बहिनोंको देते, तब खाते। बहिनें भी उनसे बहुत प्यार करतीं। इस प्रकार प्रतापरायका लड़कपन माता-पिताकी देख-रेखमें बहुत ही आनन्दसे बीता।

प्रतापरायकी बड़ी बहिनका नाम लक्ष्मी था और छोटीका माधवी। लक्ष्मीका विवाह तो पहले ही कर दिया गया था। प्रतापरायका विवाह तेरह सालकी उम्रमें और माधवीका घ्यारह सालकी उम्रमें कर दिया गया। दोनोंके विवाह पाँच-सात दिनोंके अन्तरसे एक ही साथ हुए। प्रतापरायके विवाहके बाद दस सालतक भानुराय जीवित रहे। इस बीचमें घरका सब काम प्रतापराय करने लगे। प्रतापरायके एक पुत्र भी हो गया। प्रतापराय जब तेर्झस वर्षके हुए तब पिता भानुरायका देहान्त हो गया। पिताकी मृत्युसे यद्यपि प्रतापरायके सिरका छत्र ही टूट

गया, परन्तु उनकी विलक्षण विषयविरक्ति तथा भक्तिनिष्ठाने उनको दृख्यी नहीं होने दिया । उन्होंने सोचा—

संसारमें स्थिर क्या है, जो जन्मा उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है । संसारके ममी संयोग-वियोगको साथ लिये आते हैं । आत्मा अमर है, कभी मरता नहीं और अनित्य तथा क्षणभङ्ग शरीर स्थली रहता नहीं । फिर चिन्ता किस बातकी ? पिताजी भगवान्‌के भक्त थे । भगवान्‌का नाम-जप करते-करते पिताजीने इतनी आमान्तमें शरीर छोड़ दिया मानो अङ्गसे मुखे छलोंकी माला उतार दी हो । उन्हें कोई कष्ट हुआ ही नहीं । मरनेमें कष्ट तो उनको होता है, जिनका मन भोगोंमें फँसा होता है, जो भगवान्‌के दयापूर्ण विधानमें विश्वास नहीं करते तथा जो देहको ही आत्मा मानते हैं । पिताजी ने भगवान्‌के अत्यन्त विश्वामी भक्त थे तथा आत्मनिष्ठ थे, उन्हें मरणक्लेश क्यों होने लगा ? वे भगवान्‌के धाममें पधारे हैं, इससे उन्हें वड़ा आनन्द प्राप्त हुआ होगा । उनके इस आनन्दसे स्वार्थवद देष्ट करके मैं क्यों अपनी नीचता प्रकट करूँ ?

इस प्रकारके विचारोंसे प्रतापरायने पितृवियोगके महान् दृग्खको सहज ही सह लिया । अब घर-परिवारका सारा भार प्रतापरायपर आ पड़ा । वे घरका सब काम करते थे, परन्तु जैसे भोगासक्त विषयी मनुष्यका चित्त निरन्तर निष्कपट भावसे विषयोंमें लगा रहता है, वैसे ही उनका चित्त सदा-सर्वदा श्रीभगवान्‌के स्वरूपचिन्तनमें लगा रहता था । ये चम्पाके बर्गाचेमें चञ्चलीककी तरंह निर्दिष्ट भावसे सब काम करते थे । कुछ समय बाद माता

कुसुमीका देहान्त हो गया। दिनरात माताकी सेवामें लगे रहने-वाले प्रतापरायने मङ्गलमय भगवान्‌का विवान मानकर मातुवियंगके कष्टको भी सहर्ष सहन कर लिया। अब उनके जीवनमें नित्य नये-नये सङ्कट आने लगे। मानो भगवान् उनकी विशुद्ध भक्तिकी बड़ी कड़ी परिश्वाले रहे हों। परन्तु जैसे सोना तपाये जानेपर और भी खग हो जाता है, वैसे ही कष्टोंमें तप-तपकर उनका भक्तिरूपी न्वर्ण अधिकाधिक निर्मल, उज्ज्वल और महान् उच्च श्रेणीका होने लगा।

कुछ वर्षों बाद प्रतापरायके एकमात्र पुत्र दीनवन्धुरायका भी वारह वर्षकी उम्रमें देहान्त हो गया। पुत्रकी मृत्युके समय प्रताप-राय और उनकी पतित्रिता पनी मालतीने जिस धैर्य, भगवन्निष्ठा तथा कर्तव्यपरायणताका परिचय दिया, वह सर्वथा स्तुत्य है। दीनवन्धुको साक्षिपातिक जर हो गया। माता-पिताने यथामत्य उसकी चिकित्सा करायी और भयीभाँति सेवा की।

दोनों जने पुत्रकी चारपाईके पास बैठे उसे दिन-रात भगवन्नान् और भगवान्‌की लीला-कथा मुनाते तथा उसके मनमें संसारकी असारता एवं भगवान्‌की ही एकमात्र नित्य-सत्ताका अनुभव करानेकी चेष्टा करते। दिन-रातकी हरिचंचलसे मरणासन वालक दीनवन्धुका चित्त जगत्से हट गया और वह एकमात्र श्रीभगवान्‌में लग गया। इर्मा अवस्थामें उसकी मृत्यु हो गयी। यही तो वास्तविक आत्मीयता और सर्वा सेवा है। इकलौता लड़का था, परन्तु भगवद्विद्वासी प्रतापराय तथा मालतीने परस्पर विचार करके यही निश्चित किया कि 'यह सब श्रीभगवान्‌की लीला है। भगवान्‌ने इसे दिया था, इसके द्वारा अपनी

सेवा करनेके लिये, जबतक उनकी इच्छा रही इसके द्वारा सेवा करनेका सौभाग्य उन्होंने हमलोगोंको दिया । अब वे हमें दूसरी सेवामें नियुक्त करना चाहते हैं । इसमें चिन्ताकी कौन-सी बात है ? मंसार तो उनकी लीलास्थली है । किर मृत्यु है भी क्या वस्तु ! यह तो जीवन-नाटकका एक नैसर्गिक पर्दा है जिसके हुए विना नाटककी शोभा ही नहीं होती । आत्मा मरता नहीं, शरीर रहता नहीं—मिलना-विछुड़ना, सम्बन्ध होना और टूटना यह सब इस खेलके अङ्ग हैं फिर रोना किस बातका ।’ इस प्रकार निश्चय करके वे दोनों प्रसन्नताके साथ भगवान्‌के भजनमें लग गये । लोग उनकी इस स्थितिको देखकर चकित रह जाते ।

कुछ समय बाद उनकी छोटी वहिन माघवीके पति वल्लभराय रोगशय्यापर पड़ गये । वड़ी वहिन लक्ष्मीको यह विश्वास था कि मेरे भाई प्रतापराय वड़े ही भक्त हैं, वे यदि भगवान्‌से प्रार्थना कर देंगे तो वल्लभकी मृत्यु नहीं होगी । लक्ष्मीने भाईको इसके लिये अनुरोध किया । प्रतापराय निष्काम भक्त थे । वे जानते थे कि भगवान्‌की भक्ति करके बदलेमें कुछ चाहना भक्तिको बेचना है । जो लोग भक्तिके बदलेमें धन, पुत्र, मान, यश, जीवन आदि चाहते हैं, वे वस्तुतः भगवान्‌की तथा उनकी भक्तिकी महत्ता ही नहीं जानते । वे साध्यतो असत्यमें मानते हैं उन पुत्र-धनादि नश्वर वस्तुओंको और भगवान्‌को बनाते हैं उनकी प्राप्तिका साधन । ऐसी भक्ति वास्तवमें भगवान्‌की भक्ति नहीं है । यह तो उन विषयोंकी भक्ति है क्योंकि उनका दर्जा भगवान्‌से भी ऊँचा मान रखा है । वे यह भी जानते थे कि शरीर नश्वर है और यहाँके सभी सम्बन्ध आरोपित हैं ।

इन आरोपित सम्बन्धवाले अपने तथा अपने आत्मीयोंके शरीरोंके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करना मुख्तामात्र है; परंतु वे ब्रह्मिनके अनुरोधको याल न सके। उन्होंने कहा—‘अच्छा बात है, मैं कल भगवान्‌से प्रार्थना करूँगा।’ प्रतापरायकी इस बातसे लक्ष्मीको बहुत आश्वासन मिला।

रातका लगभग तीसरा पहर था, वहनोईके बिस्तरके पास ही प्रतापराय बैठे थे। उन्हें तन्द्रा-सी आ गयी। उन्होंने देखा—कमरा अपूर्व ज्योतिसे जगमगा उठा। भगवान्‌के दिव्य शरीरधारी चार पार्षद अत्यन्त सुन्दर त्रिमान लेकर खड़े हैं और मुसकराते हुए कह रहे हैं—बल्लभ ! तुम बड़े पुण्यशील और भगवद्गुरु हो। पूर्वजन्ममें ही तुम भगवान्‌के दिव्यधारमें पहुँच गये होते, परन्तु माधवीके साथ तुम वचनवद्ध थे, इसीसे तुम्हें एक जन्म और लेना पड़ा। माधवी भी परम साध्वी है। तुम्हारे देहत्यागके बाद यह भी सती होकर तुम्हारे ही साथ भगवान्‌के परमधारमें पहुँच जायगी। परन्तु मालूम होता है प्रतापराय इस विधानको पलटना चाहते हैं। वे तुम्हारे जीवनके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनेवाले हैं। यदि उन्होंने भगवान्‌से तुम्हारा जीवन माँगा तो भगवान् उनकी प्रार्थना सुन लेंगे और तुम्हारा दिव्यधारम-गमन रुक जायगा। हमलोग तुम्हें लेने आये हैं, परन्तु प्रतापरायकी चित्तवृत्ति देखकर रुके खड़े हैं। ‘बोलो, बोलो, तुम क्या कहते हो ?’ बल्लभकी आत्माने कहा, ‘भगवन् ! मुझे अभी ले चलिये। अनन्त कालकी साध आज पूरी हो रही है, इसमें क्षणभरका भी चिलम्ब क्यों हो ? प्रतापरायजी बड़े भक्त हैं, वे भला भगवान्‌के मङ्गलविधानके विरुद्ध अपनी कोई इच्छा क्यों करेंगे ?

आप शीघ्रता कीजिये । अब मैं पलमर भी इस देहके वन्धनमें नहीं रहना चाहता । इतनेमें ही प्रतापरायकी आँखें सुल गयीं । उन्होंने बलभक्ति के चेहरेकी ओर देखा । बलभक्ति चेतनाहीन थे परन्तु उनके चेहरेपर तेज छिटक रहा था और ओटोंपर हँसी नाच रही थी । समीप बैठी माधवीको भी तन्द्रा आ गयी थी । वह चौककर उर्धा । उसने एक बार बलभक्ति के सुखकी ओर देखा और प्रतापरायसे कहा, ‘मैया ! मैंने एक बड़ा ही विचित्र स्वप्न देखा है । भगवानके पर्वत प्रतिदेवको लेने आये हैं । सुन्नको उन्होंने वैकुण्ठधामका परम दिव्य आनन्द दिखलाया और कहा कि तुम भी माथ चलो । परन्तु तुम्हारे मैया इसमें बाधक हो रहे हैं, उन्हें समझाओ ।’ इतना कहकर उन्होंने चेतनाहीन हो गयी । योड़ी डरके बाट पुनः जगकर कहने लगी—‘मैया ! मेरे स्वामी और मैं—हमद्योग मरते नहीं हैं, हम तो दिव्य आनन्दधामकी यात्रा कर रहे हैं । तुम मैया ! इसमें बाधा क्यों देने लगे ? हमारे सुखमें तो तुम्हें सुख ही होना चाहिये न ।’ माधवी स्वप्नका सारा हाल सुना गयी । सारा-का-सारा स्वप्न वही था जो प्रतापरायने देखा था । एक बात विद्योप थी, माधवी स्वप्नमें वैकुण्ठधामकी यात्रा करके वहाँकी अपूर्व सुख-शोभा भी देख आई थी । प्रतापराय चक्रित हो गये । उन्होंने मन-ही-मन कहा, ‘अहा ! मैं भगवानके विद्यानके विस्त्र अपनी इच्छा प्रकट करके कितनी मूर्खता करने जा रहा था । वे मङ्गलमय निरन्तर हमारा परम मङ्गल करनेमें लगे रहते हैं । हम अद्वादशी मनुष्य विषयामुक्तिके कारण अपना परम मङ्गल नहीं देखते और नरकके कीड़ीकी भाँति विषयस्थिती नरकमें ही पड़े रहना चाहते हैं । मर्वदर्शी सर्वान्तर्यामी सत्रके सहज

कल्याणकार्मा भगवान्‌से किस कल्याणके लिये प्रार्थना की जाय ? उनसे तो कुछ भी माँगना ही वास्तवमें ठगाना है । न माद्धम वे हमारा कैसा और कितना कल्याण सोचते हैं । हम यदि कुछ भी माँगते हैं तो वहाँतक तो हमारी बुद्धिकी पहुँच होती नहीं; अज्ञानी गंगीके कुपथ्य चाहनेकी भाँति भ्रमश इस कोई ऐसी चीज चाह चैठते हैं जो मात्रान्‌के मोने हुए कल्याणसे बहन ही नीची होतीहै, कहीं-कहीं तो उससे सर्वथा विपरीत वस्तु ही माँग लेते हैं । भगवान् द्वारा हैं, वे मजनके बदलेमें ऐसी कोई वस्तु हमें देते नहीं जो हमारा अकल्याण करे, परन्तु हमारा परम कल्याण रुक अवश्य जाता है । इसलिये भगवान्‌से कुछ भी माँगना मूर्खताकेसिवा और कुछ नहीं है ।'

बस, इसी समय वृल्लभने एक बार आँखें खोलीं और सबके देखते-देखते उनका ब्रह्मण्ड फट गया । उसीके साथ मुखसे अँका उच्चारण हुआ और प्राण निकल गये । मात्रवी पतिके साथ सती हो गयी । बहिन-बहनोईकी इस प्रकारकी मृत्यु देखकर प्रतापरायको बड़ी प्रसन्नता हुई ।

पहले कहा जा चुका है, प्रतापरायके यहाँ महाजनीका काम भी होता था । उनका यह कार्य भी एक प्रकारसे लोकसेवाका ही मानवन था । लोकसेवाके निमित्तसे भगवत्सेवा तो प्रधान लक्ष्य था ही । आसपासके गाँवोंमें किसीको रुपयेकी जरूरत होती तो वह अपनी कोई चीज लेकर इनके पास आता । इनके पास रुपये होते तो वह जितना माँगता, उतने दे देते । एक कोठरी थी, उसमें एक लोहेकी सन्दूक थी, उसमें वह अपने ही हाथों अपनी चीज रख जाता ।

जब रुपये वापस देने होते तो आकर अपनी चीज ले जाता और व्याजसमेत रुपये दे जाता । प्रतापराय इस बातका खशाल अवश्य रखते कि व्याजके नामपर किसीकी अधिक रकम तो उनके यहाँ नहीं आ गयी है । अधिक होती तो वे लौटा देते । बहुत कम व्याज लेते । लोगोंको इनके इस व्यवहारसे बड़ी सुविधा थी । इनको भी कोई झंझट नहीं था । सिर्फ खातेमें रुपये नाम जमा करने पड़ते थे । सारा काम विश्वास और ईमानदारीपर चलता था । प्रतापरायके दादाके समयसे इसी प्रकार काम होता आता था ।

होनहारकी बात थी । कुछ लोगोंके मनमें बेर्डमानी पैदा हुई । प्रतापरायसे अकारण डाहरखनेवालोंने भी साथ दिया । उन्होंने पठ्यन्त्र रचकर इनके विश्वास और सत्यप्रियतासे अनुचित लाभ उठाना और इन्हें अपमानित करना चाहा । चार पठ्यन्त्रकारियोंने समय-समयपर अलग-अलग आकर इनसे रुपये उधार लिये । रुपयोंके बदलेमें एक आदमी एक डिव्वा रख गया, तीन आदमी तीन थैलियाँ रख गये ; डिव्वेवालेने कहा, इसमें बेशकीमत गहने हैं और थैलीवालोंने कहा, इसमें सोना-चाँदी है । प्रतापरायने सदाकी भाँति कह दिया—  
 ‘जो कुछ हो रख दीजिये । जब रुपये देने आवें तो अपना देखकर ले जाइयेगा । वे लोग चले गये । कुछ समय बाद डिव्वेवालेने आकर रुपये देकर कहा—‘ये रुपये और व्याज लीजिये, मैं अपना गहनेका डिव्वा ले जाता हूँ ।’ प्रतापरायने रुपये लेकर जमा कर लिये और कहा—‘लं जाइये ।’ उसने जाकर डिव्वा निकाला और उसे प्रतापरायके सामने लाकर खोला । खोलते ही बोला—‘गजब हो गया, मैंने तां तुमको भला आदमी और ईमानदार

समझ रखा था, तुम तो बड़े वेदमान और नीच निकले। मेरा गहना निकालकर बदलेमें कंकड़ भर दिये हैं। वाह ! इसीलिये भगवान्‌के भक्त बने फिरते हो और सत्यकी मूर्ति बने रहते हो। पाखण्डी कहींके ! लाओ, मेरा गहना दो, नहीं तो वह मजा चखाऊँगा कि कई दिन याद रखवोगे !' प्रतापराय उसकी बात सुनकर सहम गये और बड़ी शान्तिसे नम्रतापूर्वक बोले, 'भाई ! मैंने तो तुम्हारे डिव्वेको छूआतक नहीं। तुम जैसे रख गये थे, वैसे ही पड़ा है।' उसने कहा, 'तब तो मैं ही कंकड़ भरकर रख नगा था, तुम तो राजा हरिश्चन्द्र ठहरे; अरे भले आदमी ! अब तुम्हारी कलई खुल गयी है, पापका घड़ा आखिर तो कूटता ही। मैरे; अब भी चुपके-से मेरा गहना ला दो तो बच सकते हो।' प्रतापरायने गहना लिया ही नहीं था ला कहाँसे देते ? इधर वह जान-बूझकर शरारतपर उतरा हुआ था, समझानेसे कैसे मानता ; 'जागतेको कोई क्या जगावे।' उसको तो बात बढ़ानी ही थी। वह मनमाना बकने-झकने लगा। प्रताप सिर नीचा किये चुपचाप सब सुन रहे थे। इतनेमें वे तीनों भी आ गये। उन्होंने भी रूपये देकर अपनी-अपनी थैलियाँ निकालीं। थैलियोंमें सोना-चौंड़ी तो था ही नहीं, उनमें भी कंकड़-पत्थर ही निकले। अब तो एकके चार हो गये। उन्होंने गालियोंकी झड़ी लगा दी। इतनेमें ही पट्टयन्त्रकारियोंकी पहलेसे की हुई व्यवस्थाके अनुसार आठ-दस आदमी और भी आ पहुँचे और झूटे ही कहने लगे कि इसने पहले हमलोंगोंके साथ भी ऐसा ही दगा किया था। गाँवके सैकड़ों आदमी इकट्ठे हो गये। अब प्रतापरायको कौन सच्चा मानता !

उस समय विंगालमें मुसलमानोंका राज्य था। काजीके पास फ्लाई हुई। उसे कुछ लोभ दे दिया गया। न्यायका नाटक रचा गया। प्रतापरायको जेलकी सजा हो गयी और उनके घर-द्वार, खेत-जमीनसहित सारी सम्पत्ति जबत कर ली गयी। काजीने तथा षड्बन्त्रकारियोंने आपसमें बटवारा कर लिया। प्रतापरायकी पत्नी मालतीको हाथ पकड़कर घरसे बाहर निकाल दिया गया। इस प्रसङ्गमें प्रतापरायको अपने-पराये सभीके द्वारा अत्यन्त अपमानित होना पड़ा। वे मध्यकी दृष्टिमें चोर और बेड़मान सावित हो गये। विभिन्नकी सीमा हो यगी। साधारण मनुष्य होता तो ऐसी स्थितिमें भगवान्का भजन तो छोड़ ही देता, बल्कि उन्हें कोसता और शायद कहता कि मैंने जीवनभर भजन किया, यदि कहीं कोई भगवान् होता तो क्या इतना अन्याय हो सकता, मौ भी मुझ भजन करने-बालेके साथ! क्या भगवान् मुझे बचाता नहीं। द्वौपदी और लक्ष्मीजीकी सभी बातें झूठी हैं। ये सब बहम हैं। भगवान्-भगवान् हुल्ल भी नहीं हैं। परन्तु प्रतापराय तो बहुत ही ऊँचे भक्त थे। ‘सूरदासकी काली कामरि चढ़त न दूजो रंग’ की कहानतके अनुगमर उन्होंके स्वच्छ निर्मल चित्ताकाशमें जरा भी विकारका बादल नहीं पैदा हुआ। उनकी शान्ति यों-की-तों बनी रही और वे मदार्का भौति अनवरत भगवान्का नाम-चिन्तन करते रहे। उनकी यह दशा देखकर कोई कहता, ‘बड़ा पक्का चोर है, देखो न, इसके चेहरेपर जरा भी उदासी नहीं आयी।’ किसीने कहा ‘दम्भकी मूर्ति है, अब भी महात्माकी-सी शक्ति बना रखी है। इतना बड़ा पाखण्डी तो हमने आज ही देखा।’ कोई बोला, यही तो बंगर

मुँह उतनी बातें। चारों ओरसे गालियोंकी तथा व्यंगवाक्योंकी बौद्धि हो रही थी, परन्तु प्रतापराय अपनी भूमिकापर अटल थे। उनके होठोंपर मुस्कराहट थी और मुखपर अपार शान्ति !

जेल जाते समय उन्होंने अपनी लीसे कहा—‘मालती ! सावधान, भगवान्‌के मङ्गलस्य विधानपर जरा भी मन मैला न बरसा। न मालूम वे किस-किस स्वाँगमें आते हैं। तुम अपने नैहर भाईके पास चली जाओ। भगवान्‌का विधान होगा तो फिर मिलना होगा।’ उनकी इस बातको सुनकर मालतीके नेत्रोंसे आँसूकी बूँदें टपक पड़ीं। वह भाईके घर चली गयी। प्रतापराय जेलकी काल-कोशीमें निवास करने लगे। उनके भजनमें तथा विश्वासमें जरा भी कमी नहीं हुई।

मालती घरसे निकलते समय अपने ठाकुरजीको तथा उनकी शृङ्खलाकी पियरीको आँचलसे ढक्कर ले आयी थी। यह बात खोरांको मालूम हो गयी। इस समय तो बच्चेन्हुड़े सभी इनके बिरोधी हो रहे थे। जनताके मतका बालत्रमें कोई मूल्य नहीं होता, वह नो हत्याके नाथ बदलनेवाला हुआ करता है। गाँवके जो लोग एक ही दिन घहले प्रतापरायको महान् भक्त और सत्यवादी समझते थे, वे ही आज उसे परले सिरेका धूते और बैंडमान बतलाने लगे। जब ओख बदलती है, तब सब कुछ अपने आप ही बदला हुआ नजर आता है। किसीने जाकर काजीसे शिकायत कर दी। काजी तो तुड़ा बैठा ही था। झट मालतीको पकड़ता मँगाया। ठाकुरजीके गहने ज्ञोन लिये गये और जब्त जायदादको चुराकर ले जानेके अपराधमें मालतीको भी जेलखाने भेज दिया गया।

जेलका दारोगा भला आदमी था । उसने मालतीको प्रतापराय-  
के साथ ही रख दिया । भगवान्‌के विधानसे मालतीका जेलखानेमें  
पहुँचना मालती और प्रताप दोनोंके लिये सुखकर हो गया । दोनों  
मिलकर एक-चित्तसे श्रीभगवान्‌का भजन करने लगे । प्रतापरायका  
भाव बहुत ही प्रशंसनीय था । एक दिन रातके समय प्रतापराय  
भगवान्‌की स्तुति कर रहे थे । मालती भी चुपचाप चित्तके द्वारा  
उनके सुर-में-सुर मिला रही थी । प्रतापरायने कहा—‘भगवन् !  
तुमने बड़ा ही अनुग्रह किया जो सब झंझटोंसे छुड़ाकर हमलोगोंके  
लिये जबरदस्ती एकान्तवासकी सुविधा कर दी । हमलोगोंका तो परम  
धन तुम्हारा भजन ही है । इस सुविधाके कारण हमें यह परम धन  
सहूलियतसे प्राप्त हो रहा है । हे नाथ ! ऐसी कृपा करो, जिससे  
तुम्हारे भजनमें हमारी आसक्ति अत्यन्त दृढ़ और पूर्ण हो जाय ।  
यहाँतक कि तुम्हारे मिलनेपर भी तुम्हारा भजन बढ़ता ही रहे । हमें  
और कुछ नहीं चाहिये । दर्शन भले ही मत दो । हमन तुम्हारे दर्शन-  
के योग्य हैं, न हमारा अधिकार है और न हमें तुम्हारी इच्छाके  
विपरीत तुम्हारे दर्शनकी उत्कण्ठा ही है, हम तो हैं दयामय ! बस,  
तुम्हारा भजन चाहते हैं । तुम दर्शन दो और कहीं भजन दीन  
लो तो हमें तुम्हारे ऐसे दर्शनकी भी इच्छा नहीं है । कृपा करो—प्रभो !’

निष्काम भक्तकी वाणी सुनकर और उनके हृदयका भाव  
समझकर भगवान् बड़े ही प्रसन्न हुए । जेलखानेकी कालकोठी  
धन्य हो गयी । भगवान् वहीं प्रकट हो गये । सहस्रों सूर्योंके  
प्रकाशके समान वहाँ प्रकाश फैल गया । त्रिभंगसे खड़े हुए मुरली-  
मनोहर श्रीगोपालजीने प्रकट होकर भक्तदम्पतिको गौरवमण्डित कर

दिया । भगवान्‌की मनोहर जाँकीके दर्शनकर प्रतापराय और मालती जगत्‌की और अपनी सारी सुध-बुध भूल गये । उनकी आँखें भ्रमर बनकर भगवान्‌के मुखकमल-मकरन्दका अतृप्त होकर पान करने लगीं । शरीर आनन्दातिरेकसे रोमाञ्चित हो गये । नेत्रोंसे प्रेमके आँसुओंकी धारा बह चली । वाणी रुक गयी । वे दोनों भगवान्‌के चरणोंमें गिर पड़े और कोमल चरणारविन्दोंका स्पर्शकर अत्यन्त धन्य हो गये । भगवान्‌ने कहा—‘वत्स प्रताप ! बेटी मालती ! मैं तुमलोगोंकी निष्ठाको देखकर बहुत ही प्रसन्न हूँ । जो लोग सांसारिक सुख और आरामके बदलेमें मेरा भजन बेच देते हैं वे बहुत ही भोले हैं । तुम्हारी बड़ी कठिन परीक्षा हुई, तुमपर बड़े-बड़े संकट आये, परन्तु तुम कभी विचलित नहीं हुए और किसी भी संकटके टल जानेके लिये भी कभी कामना नहीं की । बात यह थी कि मैं तुम्हें विशेषरूपसे अपनाना चाहता था । मैंने इसीसे तुम्हारे पुराने कर्मोंका वचा-खुचा फल आत्मीयोंके वियोग, अपमान, कलङ्क और कारावासके रूपमें भुगताकर तुम्हें कर्मसुक्त कर दिया है । अब तुम सब प्रकारसे मेरेमें प्रवेश करने योग्य बन गये हो । तुम-जैसे ऐसी निष्ठावाले भक्त मुक्तको बहुत ही प्यारे होते हैं । मेरे दर्शन बहुत ही दुर्लभ हैं । किसी साधना-विशेषसे ये नहीं होते । जो लोग दर्शनके लिये अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं और जिनको एक-एक पल युगके समान वीतता है; मेरे दर्शन उन प्रेमी भक्तोंको ही होते हैं । उनसे भी पहले उनको होते हैं, जो दर्शनकी भी पता नहीं करते । केवल अहैतुक प्रेमसे निरन्तर मेरा अनन्य भावसे भजन करते हैं । मेरे

भजनके प्रतापसे उनको संसारकी कोई भी स्थिति प्रभावित नहीं कर सकती । तुम मेरे ऐसे ही भक्तोंमेंसे हो, इसलिये मुझे बहुत ही प्रिय हो । मालती भी तुम्हें पतिरूपमें प्राप्त करके धन्य हो गयी । अब तुम्हारी जो इच्छा हो सो माँग लो ।'

प्रतापरायने कहा—‘भगवन् ! हमारी सारी साध पूरी हो गयी । अब हमें यही दीजिये, जिसमें आपके भजनमें हमारी और भी अधिक आसक्ति हो जाय । भगवान् ‘तथास्तु’ कहकर मुसकराते हुए तुरंत अन्तर्धान हो गये । प्रतापरायकी अनन्त जन्मोंकी साधना भगवन्कृपासे आज पूरी हो गयी ।

इधर कुछ ही दिनोंमें काजीसहित चारों षड्यन्त्रकारियोंके शरीर कोइसे गलने लग गये । गलित कुष्ठसे उनकी बुरी दशा हो गयी । काजीकी ली बड़ी समझदार थी । उसने पहले ही निरपराम प्रतापरायको सताने और उनके घरद्वार ढटकर मालतीको अनायिनी कर देनेका विरोध कर दिया था । एक दिन मौका पाकर उसने पतिसे कहा—‘देखिये ! आपकी यह बीमारी, मेरी समझसे भगवान्‌के भक्त प्रतापरायको पीड़ा पहुँचानेका फल है । आप यदि मेरी बात मानें तो उनको जेलसे मुक्त कर दीजिये और उनसे क्षमायाचना कराजिये ।’ काजीको पत्नीकी बात जँची । उसने प्रतापराय और मालतीको छोड़ दिया । इधर उन चारों दुष्टोंको भी अपनी भूल समझने आयी । काजीके साथ उन चारोंने आकर प्रतापरायके चरणोंमें गिरकर अपना अपराध स्वीकार करते हुए क्षमा-प्रार्थना की । उन्होंने कहा—‘आप सर्वथा निर्दोष हैं, हम बड़े ही नीच हैं जो हमने स्वार्थवश आपर झट कलङ्क लगाया और

आपको जेलखाने मेजा । आप हमलोगोंको क्षमा करके भगवान्‌से प्रार्थना कीजिये । जिससे हम इस अत्यन्त दुष्ट रोगसे छूट जायँ । प्रतापरायने कहा—‘भाईयो ! तुम्हारा इसमें कुछ भी दोष नहीं है, तुम ज्ञो निमित्तमात्र थे । यह सब तो हमारे किये हुए कर्मोंका फल था । परन्तु इससे हमें परम लाभ हुआ, हमारी अनन्त जन्मोंकी साध पूरी हुई । हमलोग तुम्हारे इस उपकारके लिये अत्यन्त कृतज्ञ हैं ।’ इतना कहकर उन्होंने भगवान्‌से प्रार्थना करते हुए कहा—‘भगवन् ! इन पाँचों भूले हुए भाईयोंका अपराध क्षमा होना चाहिये । इन्होंने काफी दण्ड भोग लिया है । फिर, इन्होंने हमारा तो उपकार ही किया है । आप यदि कृपा करके इन्हें रोगमुक्त नहीं करेंगे तो हमें बड़ा ही दुःख होगा । हे नाथ ! हम आपकी शरण हैं । रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ।’ इतना कहते ही अचानक उन पाँचोंके शरीर कञ्चन-से हो गये । वे प्रतापरायके चरणोंमें गिर पड़े । अब तो गाँवके सभी लोग—वे सभी लोग जिन्होंने झूठमट्ठ ही प्रतापरायपर कलङ्क लगानेमें सहायता दी थी, वहाँ आकर प्रतापराय और मालतीके चरण छू-छूकर उनसे बार-बार क्षमा माँगने लगे । काजीने उनकी जब्त की हुई सम्पत्ति लौटा दी । प्रतापरायने सारी सम्पत्ति गरीबोंको बाँट दी और दोनों द्वी-पुरुष संसार त्यागकर श्रीधाम वृन्दावनको चले गये । तीस साल वहाँ निरन्तर भगवद्भजन किया और फिर भगवान्‌का नाम जपते-जपते चित्तवृत्तियों-को भलीभांति भगवान्‌में तल्लीन करके दोनों गोलोकको पधार गये ।

वोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

## भक्त गिरवर

नमंदाके पुण्यतटपर एक छोटे-से गाँवमें गिरवर नामक एक सदाचारी राजपूत रहते थे । घरमें बूढ़े माता-पिता थे, गौरी नामकी पतित्रिता पत्नी थी और एक छोटा लड़का था । लड़केका नाम था ऊदा । क्षत्रियके वर्णधर्मानुसार आजीविकाका जमाना नहीं था, इससे गिरवरकी गृहस्थीका आधार खेती ही था । भगवान्‌की कृपासे हर साल इतना अनाज पैदा होता कि लगान वौरह चुकानेके बाद सालभर उसीसे अच्छी तरह सबका जीवननिर्वाह हो जाता । अन्न खरीदनेकी तो जरूरत होती ही नहीं, कपड़े-लत्तेकी आवश्यकता भी सब खेतके अनाजसे मजेमें पूरी हो जाती । गिरवर और गौरी बूढ़े माता-पिताकी सेवा मन लगाकर करते । उनको सदा यही चिन्ता रहती कि बूढ़े माता-पिताकी रुचिके विरुद्ध कहीं कोई काम हमसे न बन जाय । पुत्र और पुत्रवधूकी सेवासे अत्यन्त प्रसन्नचित्त हुए माता-पिता भी उनके सदा अनुकूल रहते और यही चाहते कि हमारे पुत्रवधू प्रसन्न रहें और हम अपनी ऐसी ही रुचि रखें कि उन्हें कोई भी कष्ट न हो और वे अपने हृदयसे सदा उन्हें आशीर्वाद देते रहते । गौरी सास-ससुरकी सेवा

तो करती ही, पतिकी सेवामें भी जरा त्रुटि नहीं करती। उसका जीवन ही सेवामय था, उसे सेवाका चाव था। वह यही सोचा करती कि मुझसे सास-ससुर और पतिकी रुचिके अनुसार सेवा बनती ही नहीं। सास-ससुर और पतिका भी गौरीपर बड़ी ही स्नेह और प्रेम था। वे भी सदा उसे सुखीही देखना चाहते थे। छोटा लड़का ऊदा भी माता-पिताका आज्ञाकारी था।

सबसे बड़ी बात यह थी कि घरमें सभी श्रीभगवान्‌के भक्त थे। सब मिलकर रोज भगवान्‌की पूजा करते और भगवान्‌के सामने कीर्तन करते। गिरवर पढ़े-लिखे ज्यादा नहीं थे, परन्तु विद्याका जो चरम फल ‘भगवान्‌में विश्वास’ है, वह उन्हें प्राप्त था। वे सदा इसी निश्चयपर रहते थे कि ‘भगवान् जो कुछ करते हैं, सब कल्याण ही करते हैं।’

यद्यपि उनकी यह धारणा सच्ची थी, परन्तु भगवान् तो इसको और भी प्रत्यक्ष करके सबको दिखाना चाहते थे। गाँवके लोगोंमें जब गिरवर ऐसा कहते कि ‘भगवान् जो कुछ करते हैं, सब कल्याण ही करते हैं।’ तब उनमेंसे कोई-कोई, सामने नहीं तो पीछेसे, यह कहता कि ‘घरमें सारे सुख हैं—खानेको अन्न है, अनुकूल खी है, पुत्र है, मा-बाप हैं तब ऐसा कहनेमें क्या लगता है। दुःखमें ऐसा कहे तब माना जाय कि गिरवर सचमुच ऐसा ही मानते हैं ! गिरवरके कर्म-फलभोगका समय आया। भगवान्‌की इच्छा थी, वे गिरवरका गौरव विशेष बढ़ाना चाहते थे। घटनाचक्र बदला। गिरवरके माता-

पिताका देहान्त हो गया । गिरवरको इससे बड़ा दुःख हुआ । दुःख  
इसलिये नहीं कि माता-पितासे कोई खास सहारा था सो टूट गया,  
दुःख इस बातसे हुआ कि अब माता-पिताकी सेवाका सौनाम्य  
नहीं रहा ! सचमुच माता-पिताकी सेवाका सुअवसर बड़े पुण्यसे  
ही मिलता है । जो लोग जीवित माता-पिताकी सेवा नहीं करते  
और उनकी अवहेलना करते हैं वे पीछे बहुत पछताया करते हैं,  
परन्तु वह अवसर तो जीवनमें फिर कभी मिलता ही नहीं !

गिरवरको इस बातसे मनमें बड़ा दुःख हुआ, परन्तु उनके इस  
निश्चयमें कोई अन्तर नहीं पड़ा कि 'भगवान् जो कुछ करते हैं, सब  
कल्याण ही करते हैं ।' लेकिन वे समझ नहीं पाये कि इसमें कल्याण  
क्या है ? थोड़े ही दिनों बाद आठ वर्षका बच्चा ऊदा एक दिन अपनी  
माँके साथ नर्मदा नहाने गया था । माँ कपड़े उतार रही थी । ऊदा जलमें  
बुसा कि एकाएक एक घड़ियाल उसका पैर पकड़कर खींच ले गया ।  
बालक चिल्डाया 'अरे भगवान् ! हे ठाकुरजी ! मुझे बचाओ ।' माँ रो  
उठी । उसने बहुत शोर मचाया, कोई मेरे बच्चेको बचावे । लोग टैंडे  
परन्तु घड़ियाल तब्तक उसे लेकर गायब हो चुका था । गौरी रोती-  
पीटती घर पहुँची । गिरवर उस समय भगवान्की पूजा कर रहे थे ।  
गौरीने रोते-रोते सब हाल सुनाया । भगवान्की पूजा समाप्त करके  
गिरवर उठे । उनके मुँहसे अन्यासवश सहसा निकल गया—'भगवान्  
जो कुछ करते हैं, सब कल्याण ही करते हैं ।' पीछे जरा सकुचाये भी  
कि पुत्रशोकसे पीड़िता गौरीको मेरे ये शब्द शायद बुरे लगे होंगे ।  
परन्तु अन्तरात्माने फिर यही कहा कि बात तो सच यही है ।  
भगवान् तो कल्याण ही करते हैं । उन्होंने गौरीसे कहा—

‘तुम रोती क्यों हो ? यह भी सोचो कि संसारमें कौन किसका है । यह तो मुसाफिरखाना है । मुसाफिर आते हैं, एक जगह ठहरते हैं, तरहन्तरहके सम्बन्ध जोड़ लेते हैं, फिर अपने-अपने समयपर सब अपनी-अपनी राह चल देते हैं । संसारका यह नाता स्थायी थोड़े ही है । आज जो पुत्र बना है, सम्भव है वही कभी पिता बना होगा और कभी हमारा शत्रु भी बना होगा । सब जीव अपने-अपने कर्मफल-भोगके लिये नाना योनियोंमें जन्म लेते हैं और उस जन्मका भोग समाप्त होनेपर चले जाते हैं, इसमें शोककी कौन-सी बात है ?

‘याद करो, उस दिन जो महात्मा आये थे, उन्होंने क्या कहा था । उन्होंने कहा था—यह घर भगवान्‌का बगीचा है और तुम-लोग इसकी सेवा और सम्हाल करनेवाले माली हो । घरमें जो कुछ है सब भगवान्‌का है । अपना कभी न समझना । फिर तुम रो र्ही हो ? क्या ऊदा तुम्हारा था ? वह तो भगवान्‌की चीज थी । माली बगीचेमें सुन्दर आमका पेड़ लगाता है, उसे पालता-पोसता है, बड़ा करता है, खूब सेवा करता है । समय आनेपर उसमें आम लगते हैं । आमोंमें एक आम बहुत ही सुन्दर और मधुर है । माली उस समय यही तो चाहता है कि यह सबसे बढ़िया आम बगीचेके स्वामीको मैं अपने हाथों देकर आऊँ । यों तो सभी आम मालिकके हैं, परन्तु इसको तो मैं ख्यं देकर आऊँगा । मालिक प्रसन्न होंगे, यह जानकर कि मालीने क्रितनी मेहनतसे और लगनसे इतने बढ़िया आमका पेड़ लगाया और उसका बढ़िया-से-बढ़िया फल मुझे लाकर अर्पण कर दिया । यारी ! ऊदा तो मालिकके बगीचेका सबसे बढ़िया

फल था, वह तो मालिकके अर्पण करनेके लिये ही था । उसे यदि मालिकने माँगकर ले लिया तो इसमें तुम्हें दुःख क्यों होना चाहिये ? तुमने उसे इसीलिये तो पाला-पोसा था । मालिककी चीज मालिकके अर्पण हो गयी, तुम इसमें विषाद क्यों करती हो ?

‘यह तो तुम जानती ही हो, आत्मा कभी मरता नहीं, वह तो अजर-अमर है । शरीर प्रकृतिसे उत्पन्न पाँच भूतोंसे बना होता है । पाँच भूत कहीं नष्ट हुए ही नहीं हैं । उनका जो एक पुतला बना था, वह ढूट गया । आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी अपने-अपने स्वरूपमें मिल गये । फिर नष्ट क्या हुआ ? वस्तु तो नष्ट हुई नहीं, वहाँ नहीं, और कहीं है । अरी ! एक मालिककी कई जगह दूकानें हैं । यदि मालिक एक जगहके स्वप्ने दूसरी जगहकी दूकानमें भिजवा दे तो पहली जगहका मैनेजर इससे शोक क्यों करे ? उसे तो मालिककी सेवा करनी है । स्वप्ने कहीं नष्ट तो हुए ही नहीं । वे तो मालिककी दूकानमें ही रहे—यहाँ नहीं, वहाँ सही । तुम सोचो, ऊदाकी आत्मा कहीं नष्ट तो नहीं हो गयी । वह कहीं-न-कहीं भगवान्‌के राज्यमें ही होगी और निश्चय ही होगी भगवान्‌की देख-रेखमें—फिर तुम ऊदास क्यों होती हो ?

‘एक बात और है—ऊदा तो भगवान्‌का भक्त था । वह रोज कीर्तन करता था । तुम कहती हो—घड़ियालके द्वारा पकड़े जानेपर भी उसने यही कहकर पुकार मचायी कि ‘हे भगवान् ! हे ठाकुरजी ! मुझे बचाओ ।’ जिसने अपने जीवनमें सरलभावसे भगवान्‌के नामका कीर्तन किया और मरते समय जिसने भगवान्‌को पुकारा वह तो

भगवान्‌के परमधाममें ही गया होगा । प्यारी ! ऐसे पुत्रके लिये तुम शोक क्यों करती हो ? सच्ची माता तो वही है जो अपनी सन्तानको परम सुखी बनावे । भगवान्‌का धाम तो नित्य आनन्दमय है; ऊदा वहीं तो गया है । फिर तुम दुखी क्यों होती हो ?

‘फिर यह भी कौन कह सकता है कि वह मर ही गया है । सन्मत है वह बच गया हो और इसी जीवनमें तुम्हें फिर मिल जाय । भगवान्‌की लीला विचित्र है । किसी भी दृष्टिसे सोचो, शोकका कोई कारण ही नहीं है । विश्वास करो, भगवान्‌ जो कुछ करते हैं, सब कल्याण ही करते हैं । तुम शोक छोड़कर भगवान्‌की कृपापर विश्वास करो और उनके स्मरणमें चित्त लगाओ !’

पतिकी सीख सुननेसे गौरीका हृदय शान्त हो गया । उसने कहा, ‘खामिन् ! आपका कथन सत्य है । मैं मोहब्बत रो रही थी । अब मुझे विश्वास हो गया कि भगवान्‌ जो कुछ करते हैं, सब कल्याण ही करते हैं । मेरा तो मन अब भी यही कहता है कि ऊदा मरा नहीं है, वह और भी उज्ज्वल रूपमें मुझको जरूर मिलेगा ।’

‘मिले या न मिले । हमें क्यों उसके मिलनेकी चाह हो और क्यों न मिलनेका दुःख हो । भगवान्‌ जैसा चाहेंगे वही होगा और उसीमें मङ्गल होगा । मिलेगा तो भगवान्‌की वस्तु है, हम उसकी सेवा करेंगे । नहीं तो भगवान्‌ जो दूसरी सेवा सौंपेंगे वह करेंगे । अपना काम तो सेवा करना है । जो मालिककी सेवासे जी चुराता है वह नमकहराम है और जो मालिककी सम्पत्तिको अपनी समझता है वह बेर्इमान है । हमलोगोंको तो सावधानी और ईमान-

दारीके साथ स्वामीकी सेवा करनी है। हमारी आसक्ति सेवामें होनी चाहिये। फिर चाहे सेवाका प्रकार और क्षेत्र कैसा भी क्यों न हो। प्रकार और क्षेत्रका चुनाव स्वामी ही करें। हमें तो बस, सेवाके लिये शक्ति और सुअवसर मिलता रहे।' गिरवरने गम्भीरतासे ऐसा कहा।

'धन्य है स्वामी! आपकी निष्ठाको!' इतना कहकर गौरी चुप हो गयी।

गिरवर बाटपर गये, उन्होंने अच्छी तरह पता क्याया; परन्तु कहीं ऊदाकी लाश भी नहीं मिली। तब सबने कहा कि 'घड़ियाल ऊदाको खा गया, अब भाई! शोक ओड़कर भगवान्‌को भजो।' गिरवरने मन-ही-मन कहा—'भगवान् सब कल्याण ही करते हैं।'

गिरवर घर लौट आये। अब उन्हें खयाल आया कि पिताजी और माताजी आज जीवित होते तो उन्हें बड़ा कष्ट होता; क्योंकि ऊदा उन्हें बड़ा ही प्यारा था। भगवान्‌ने उन्हें पहलेसे ही अपने धाममें बुलाकर बड़ा कल्याण किया, यह बात अब समझमें आई।

वूढ़े माता-पिताकी मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। पुत्र भी घड़ियालके मुखमें चला गया। अब तो गिरवर और गौरीके सेवाके पात्र एकमात्र श्रीभगवान् ही रह गये। गिरवरने अपना खेत अद्दीमें दूसरोंको दे दिया और वे अपना सारा समय भजनमें ही बिताने लगे। आधी पाँतीमें भी खेतमें हर साल काफी अनाज मिल जाता और उससे गिरवर-गौरीका काम मजेमें चल जाता। उपरका खर्च तो कोई रह ही नहीं गया था। न लड़केके विवाह-शादीका चिन्ता थी। केवल दो प्राणियोंके खानेभरको अनंती की जरूरत थी। हाँ,

श्रीठाकुरजीकी सेवामें जहर कुछ खर्च लगता था, परन्तु वह भी खेतके आवे अनाजसे अनायास ही चल जाता था। गिरवर सुबह-शाम दोनों समय एक-एक पहर एकान्तमें बैठकर भगवान्‌का ध्यान करते—दिनमें पुराण सुनते और निरन्तर विष्णुसहस्रनामका पाठ करते रहते। सहस्रनाम उन्हें कष्टस्थ था। और गौरी तो सुबहमें रातलक श्रीभगवान्‌की सेवामें लगी रहती। अब उसका सारा स्लेह ग्रामः सब जगहसे सिमटकर एकमात्र श्रीभगवान्‌में ही लग गया था। घरमें कोई निशेष काम रह ही नहीं गया था। दोनों पति-पत्नी एक समय भोजन करते। इससे दोनोंको भजनके लिये खूब समय मिलता था। इस प्रकार कई वर्ष बीत गये। उनमें भजनका प्रेम तथा उसीके साथ-साथ आनन्द और शान्ति भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। एक दिन गिरवरने गौरीसे कहा—देखो, अब तो तुम्हें अनुभव हो गया न कि ‘भगवान् जो कुछ करते हैं, सब कत्याण ही करते हैं।’ ऊदा होता तो क्या हमलोग अपनी सारी ममताको उससे हटाकर कभी भगवान्‌के भजनमें इस प्रकार लग सकते। ऊदाको डूमसे हटाकर भगवान्‌ने हमपर बड़ी कृपा की जो हमें आठे पहर अपनी चाकरीमें ही लगा दिया। गौरीने कहा, ‘बहन तो ऐसी ही है। सचमुच भगवान्‌ने बड़ी कृपा की। परन्तु सुझे बीच-बीचमें ऊदा याद आ जाता है।’ गिरवर बोले, ‘माताका हृदय ऐसा ही होता है। इसमें कोई नयी बात नहीं है। परन्तु जुम समझदार हो, ऊदाकी यादसे अब कोई लाभ नहीं है। तुम्हें तो एकमात्र श्रीठाकुरजीमें ही मन लगाना चाहिये।’ गौरी बोली,

‘ठीक है, अब और भी चेष्टा करूँगी। भगवान्‌की कृपा तो अपार है हीं, फिर मेरा यह रहा-सहा मोह क्यों न मिटेगा?’

यों साधना करते-करते दोनों पति-पत्नीके तन, मन, धन, प्राण—प्रायः सभी भगवान्‌में लग गये।

श्रीगीताजीके इस श्लोकके अनुसार—

मच्चिन्ता मद्भूतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।

कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥

( १०।९ )

—उनके चित्त भगवान्‌में लग गये, उनके प्राण भगवान्‌के अर्पण हो गये, वे जब बोलते तब आपसमें केवल भगवान्‌के ही प्रेम-भावकी चर्चा करते, भगवान्‌का ही कीर्तन करते, भगवद्भजनमें ही सन्तुष्ट रहते और केवल श्रीभगवान्‌में ही प्रेम करते।

घटनाचक्र फिर बदला। लगभग दस वर्ष बाद दंशमें भयानक अकाल पड़ा। पशु मर गये। सब लोग दाने-दानेको तरसने लगे। गिरिवर और गौरीको श्रीठाकुरजीकी पूजामें भी कठिनाई हो गयी। उन्होंने कुछ दिन तो घरमें जो कुछ था, उसे बेचकर काम चलाया; परन्तु आखिर उन्हें घरसे निकलना पड़ा। भगवान्‌की श्रीमूर्तिकी पूजाका भार पुरोहितको सौंपकर और पूजाके खर्चके लिये पुरोहितजीको गौरीकी सोनेकी नय देकर श्रीभगवान्‌का पावन नाम लेते हुए दोनों ली-पुरुष गाँवसे चल पड़े। रातको दोनों एक पेड़के नीचे लेटे। भगवान्‌की लीला बड़ी विचित्र है। वे कब किस रूपमें कृपा करते हैं, कुछ कहा नहीं जाता। एक

जहरीला साँप निकला और गौरीके पैरको डस गया । गौरी चौंक उठी, उसने जोरसे पुकारा, ‘भगवन् ! तुमने बड़ी दया की । साँपके रूपमें मुझे स्पर्श करने आये ! मैं धन्य हो गयी ।’ गिरवर जाग उठे । देखा, महाकाला विषधर सर्प चला जा रहा है । गौरी विषसे छटपटा रही है, परन्तु उसके मुखसे ‘हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥’ की ध्वनि निकल रही थी । गिरवरने भी उसी ध्वनिके साथ अपनी ध्वनि मिला दी । विष चढ़नेके साथ ही गौरीकी कीर्तन-ध्वनि कुछ मन्द पड़ने लगी । अनितम श्वासतक गौरीके मुखसे भगवान्‌का नाम निकला । श्वास बंद हो गया । चाँदनी रातमें गिरवरने देखा—गौरीके मुखपर विलक्षण तेज छाया है और वह मानो मुसकरा रही है । गिरवरके मुखसे निकला ‘भगवान् जो कुछ करते हैं, सब कल्याण ही करते हैं ।’ रातभर गौरीके पास बैठे गिरवर भगवान्‌का कीर्तन करते रहे ।

सबेरा हुआ । गिरवरकी यह बात सुनी हुई थी कि साँप काटनेसे मरे हुएको जलाना नहीं चाहिये । इसलिये गिरवरने गौरीकी लाशको कंधेपर उठाकर भगवान्‌का नाम लेते-लेते नर्मदाजीमें बहा दिया । लाश बह चली । गिरवरकी दोनों आँखोंसे जाने क्यों दो मोती टपक पड़े !

गिरवरने अपनेको मँभाला । जब लाशका दीखना बंद हो गया तब गिरवर आगे बढ़े । अब उनका मन वैराग्यसे छल्क उठा । भगवान्‌के लिये छटपटी लग गयी । कुछ दिन यों ही बीते ।

भगवद्दर्शनकी उन्कण्ठा बढ़ती गयी । एक दिन जब बहुत ही व्याकुलता हुई तब वे एक पेड़के नीचे बैठ गये और बड़ी करुणासे भगवान्‌को पुकारने लगे । उन्होंने कहा—‘हे मेरे परमात्मा ! अब तो मुझसे एक क्षण भी तुम्हारे बिना नहीं रहा जाता । मैं नीच हूँ, अधम हूँ—जो कुछ भी हूँ, तुम्हारा हूँ । मुझे दर्शन देकर अपने धाममें ले चलो ! मैं देखता हूँ—तुम्हारे बिना सारा जगत् मुझको शून्य ही दिखायी देता है । तुम्हारी आहट सुनता हूँ । जिवर कान जाते हैं, उधर ही तुम्हारे आनेकी आवाज सुनायी पड़ती है; परन्तु तुम दिखायी नहीं पड़ते । मैंने बहुत कालक तुम्हारा बिलोद सहा । अब प्रभो ! नहीं सह सकता । अब तो तुम्हारे बिना मेरा पलभर भी नहीं चल सकता । तुम नाथ ! अब प्रकट स्यों नहीं होते ? मैं इतना छटपटा रहा हूँ और तुम छिपे-छिपे तमाशा देख रहे हो । प्रभो ! यह जीव न मालूम कबसे भटक रहा है । तुम्हारे वियोगकी आग इसके हृदयमें कर्मी नहीं जली । नहीं तो, क्या तुम इसको दर्शन दिये बिना कर्मी रह सकते ? परन्तु जीव इस आगको कैसे जलावे । तुम्हारे विहङ्की आग संसारका सर्वस्व जला देती है । जीव तो फँसा रहता है संसारकी साधारण-से-साधारण वस्तुके मोहमें । वह कैसे सबका जलना सहन कर सकता है ? तुम्हीं कृपा करके कभी इस आगको जलाते हो और तुम्हीं उसे कँक-कँककर प्रचण्ड बनाते हो । तुमने बड़ी दशा की, तुम्हारे आग्रहका मैं क्या बखान करूँ जो तुमने इस अधमके हृदयमें ऐसी सर्वसंहारिणी आग लगा दी । जब आग लगा दी तो अब तुम्हीं आकर अपनी दुर्लभ रूप-सुंधा-धारासे इसे

शान्त करो । अब यह आग और किसी तरह बुझ ही नहीं सकती । प्रभो ! मेरे अन्तरतम ! आओ और इस आगको बुझाने आओ । परन्तु प्रभो ! यह भी तो मेरी दुर्बलता ही है जो मैं इस आगको बुझाना चाहता हूँ । नहीं, नहीं ! आग और भी प्रचण्ड रूप धारण करे । भस्म कर दे सब कुछ—मैं जो ‘मैं’ ‘मैं’ कह रहा हूँ, इसे भी बिल्कुल जला दे—खाक कर दे । बस, एकमात्र तुम्हीं रह जाओ । और फिर तुम आओ तो तुम्हें इसके खाकके ढेरमें—बस, तुम्हारी ही मूर्ति मिले । बढ़ाओ, बढ़ाओ—हे प्रचण्ड अग्निमें प्राण फूँकनेवाले महान् अग्नि ! अपनी ज्वालाको ! यों कहते-कहते गिरवर क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गये । दूसरे ही क्षण चेतन हाँकर देखते हैं, तमाम जंगल अपूर्व ज्योतिसे जगमगा उठा है । चारों ओर मानो अपार आनन्दसे भरा शान्त महान् प्रकाश फैला है । भगवान्‌का वृन्दावन धाम वहाँ उतर आया । नर्मदाजी श्यामसलिला यमुनाजीके रूपमें परिणत हो गयी । सामने कदम्बका सुन्दर वृक्ष है और उसके नीचे गौओं और ग्वाल-बालोंसे विरे हुए नटवरवेशमें श्रीकृष्ण मोहिनी मुरली वजा रहे हैं । मोहनकी मोहिनी छबि देखकर और उनकी मुरलीकी मधुर लहरी सुनकर गिरवर मुग्ध हो गये । उनकी आँखें अपलक होकर श्यामसुन्दरकी रूप-सुधाका अमृत पान करने लगीं । अहा ! भगवान्‌की कैसी मधुर क्षबि है—नील आभायुक्त मनोहर श्याम वर्ण है, नाना प्रकार-की धातुओंसे सब अङ्ग सजाये हुए हैं, मस्तकपर मोरणिछका मुकुट सुशोभित है, गलेमें मालतीकी और नवीन गुज्जाओंकी माला शोभा पा रही है । सुवर्णके समान पीला जरीका पीताम्बर पहने हैं । सखा

श्रीदामके कंधेपर बायाँ हाथ रखें ललित त्रिभङ्गीसे खड़े-खड़े मुसकरा रहे हैं। उनकी मधुर मुसकराहट ब्रह्मानन्दको भी फीका किये देती है। दाहिने हाथमें अति सुन्दर एक कमल लिये हैं। श्यामसुन्दरकी रूपमाधुरीके दर्शनकर गिरवर आनन्दसागरमें छब गये। उनका शरीर पुलकित हो गया, वाणी रुक गयी और आँखोंसे आनन्दाश्रुओंकी धारा वह चली। वे सब कुछ भूलकर जाने किस आनन्दसाग्राज्यमें चले गये। कुछ देर भक्तको इस दशामें रखकर फिर भगवान् मधुर वाणीसे बोले—‘गिरवर ! तू मुझे अत्यन्त ही प्यारा है, आज तेरे ही लिये यहाँ दिव्य वृन्दावनका प्राकृत्य हुआ है। तू धन्य हो गया। अब तू मेरे परमधाममें चल। गौरी मरी नहीं है, वह कुछ दिन पार्थिव शरीरमें और रहेगी। उसके मनमें पुत्रदर्शनकी कामना थी, इससे वह ऊदासे मिलकर तब मेरे धाममें आवेगी। तू धन्य हो गया।’

भगवान्‌के इतना कहते ही सहसा गिरवरके शरीरका रंग बदल गया। वह ज्योतिर्मय हो गया। कुछ ही क्षणोंमें उसमेंसे ज्योतिका एक पुञ्ज निकला। ज्योतिपुञ्जके निकलते ही शरीर निष्ठाण होकर जमीनपर गिर गया। और वह ज्योतिपुञ्ज देखते-ही-देखते सुन्दर दिव्य शरीरधारी एक कृष्णसखा गोपबालकके रूपमें परिणत होकर श्रीकृष्णके चरणोंपर गिर गया। भगवान्‌ने उसे बड़े प्रेमसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। और फिर तुरंत ही अपने सब सखाओं और वृन्दावनसहित भगवान् अन्तर्धान हो गये। गिरवरका मृत देह जंगलमें एक पेड़के नीचे पड़ा रह गया।

गौरीका शरीर बहते-बहते, किनारेका एक बड़ा पेड़ टूटकर नदीमें गिर पड़ा था, उसमें उलझकर अटक गया था । सात दिन देह-उसीमें उलझा रहा । आश्वर्यकी बात तो यह है कि सात दिनोंमें किसी भी जल-जन्तु या मांसाहारी पक्षीने उसे छुआ भी नहीं । आठवें दिन लहरोंकी चोट खाते-खाते शरीर उलझनसे निकला और आगे बह चला । वहाँसे थोड़ी ही दूरपर नदी-किनारे एक सिद्ध महात्मा रहते थे । वे नर्मदामें स्नान करने आये थे । भगवान्‌के विधानसे उसी ममय गौरीका शरीर बहते-बहते उसी जगह किनारे आ लगा । महात्माकी दृष्टि उस ओर गयी । उन्होंने अपने योगबलसे सब बलें जान लीं और उसे जीवित समझकर वे बाहर निकाल लाये । देहको जमीनपर रखकर उन्होंने हाथमें जल लिया और उसे अभिमन्त्रित करके देहपर छिड़क दिया । जलके छीटे लगते ही गौरी भगवान्‌के नामकी ध्वनि करती हुई वैसे ही उठ बैठी जैसे कोई नींदमें सोता हुआ आदमी जागकर सहसा उठ बैठे । गौरीने अपने सामने एक तेजपुञ्ज वृद्ध तपस्वीको देखकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया । महात्माने उसको अपनी कुटीपर ले जाकर एक मधुर फल देकर कहा कि ‘बेटी ! इसे अभी खा लो ।’ आज्ञा पाकर गौरीने फल खा लिया, फल खाते ही वह पूर्ण खस्थ हो गया, शरीरमें बल आ गया, मनमें तेज आ गया । उसे ऐसा मालूम हुआ मानो मन सारे संस्कारोंके ब्रोडिको उतारकर हल्का हो गया है । थोड़ी देरमें मनने फिर कुछ काम शुरू किया, तब उसे अपने पतिकी याद आयी । महात्मा गौरीके मनका हाल जानकर उससे कहने लगे—

‘तुम्हारे स्वामी बड़े ही भगवान् थे, तुम भी बड़ी पुण्यशाला हो जो तुमको ऐसे पति मिले । अब तुम पतिकी स्मृतिको भुला दो । तुम्हारे पतिको स्वयं भगवान् अपने परमधाममें ले गये हैं ।’ इतना कहकर महात्माने दिव्य दृष्टिसे सारी घटना जानकर गिरवरको जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए और वे दिव्य देह धारण कर भगवान्‌के साथ परमधामकी गये थे, वह सारा वृत्तान्त सुना दिया ।

साध्वी गौरी पतिकी परमगति सुनकर प्रसन्न हुई । मैं साथ नहीं जा सकी, इस बातका कुछ खेद-सा उसे अवश्य हुआ । फिर सोचा, कहीं मैं साथ होती और इससे यदि स्वामीको भगवान् दर्शन न देते तो बहुत ही बुरा होता । यह बड़ा अच्छा हुआ, मेरे कारण स्वामी तो परमानन्दसे वश्चित न रहे । मुझे इससे अधिक और क्या आनन्द होगा कि मेरे स्वामी—अग्निल ब्रह्माण्डके स्वामी श्रीकृष्णके सखा बनकर उनके साथ परमधामको पवार वहाँ दिव्य आनन्दका भोग कर रहे हैं ।

महात्माने कहा—‘बेटी ! तुम चिन्ता न करो । तुम तो मुक्त ही हो । देखो, यह सारा जगत् रज्जुमें सर्पकी भाँति केवल अध्य-रोपितमात्र है । वस्तुतः न उत्पत्ति है, न विनाश है । यहाँ न कोई बद्ध है, न साधक है, न मुमुक्षु है और न मुक्त है । यही परमार्थ-तत्त्व है । जगत्‌की कल्पनाको छोड़ दो । तुम आत्मस्वरूप हो, नित्यमुक्त हो । तुम्हारे न कोई अपना है, न पराया है । दूसरा कोई है ही नहीं, तब अपना-पराया कहाँसे होता । यह भी जान रखो, आत्माका कभी कहीं आना-जाना नहीं है । वह तो एकरस तथा

नित्य है। यह जो नानात्व दीखता है, केवल अज्ञानसे दीखता है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो आत्मतत्त्वसे पृथक् या अपृथक् हो। बस, केवल एक आत्मतत्त्व ही है। जन्म-मृत्यु तो सब खेल हैं। अज्ञानको छोड़कर तुम अपने स्वरूपमें स्थित हो जाओ। जगत् केवल व्यवहारमें है, परमार्थतः तो केवल एक नित्य, अजन्मा, शाश्वत आत्मतत्त्व ही है और वह आत्मतत्त्व तुम्हीं हो। इस प्रकार आत्मतत्त्वको जानकर और इसमें स्थित होकर व्यावहारिक जगत्‌में विचरण करो।

गौरीका अन्तःकरण शुद्ध था ही, महात्माके दिये हुए सिद्ध फलसे उसके संस्कारोंका भी नाश हो चुका था। सूखे घासमें आग-की चिनगारी पड़नेपर वह जैसे कुछ ही क्षणोंमें जलकर भस्म हो जाता है, या यों कहना चाहिये कि सूर्योदय होते ही जैसे अन्वकार-का नाश हो जाता है, वैसे ही महात्माके इन थोड़े-से शब्दोंको सुनते ही गौरीके अज्ञानका सर्वथा नाश होकर उसे सम्यक् बोध हो गया। ज्ञानकी उज्ज्वल दीपिसे उसका चेहरा जगमगा उठा। चित्तर्की अपार शान्ति मुखमण्डलपर भी आ गयी। उत्तम अधिकारीको अधिक उपदेशकी आवश्यकता नहीं होती। गुरुमुखसे निकला हुआ एक ही महावाक्य उसके मोहनाशके लिये काफी होता है। अस्तु, कुछ ही क्षणों बाद महात्माजीने कहा—‘गौरी ! जाओ, थोड़ी ही दूरपर तुम्हारे पतिकी मृत देह पड़ी है। मेरे शिष्य तुम्हारे साथ जाते हैं; जाकर उसका संस्कार करो और फिर जबतक प्रारब्ध शेष है, अपने आत्मस्वरूपमें सदा स्थित रहकर द्रष्टारूपसे उसके भोगको

देखती हुई जगतमें यथेष्ट विचरण करो । तुम्हारी एक ( पुरानी )  
प्रबल वासना थी, उसके पूरी होते ही तुम इस शरीरसे छूटकर  
परमधाममें चली जाओगी ।'

मन्त्रमुग्धकी तरह महात्माके प्रत्येक वाक्यको स्वाभाविक ही  
स्वीकारकर गौरी वहाँसे चल दी । न जाने कहाँसे आकर चार  
ब्रह्मचारी उसके पीछे हो लिये ।

कुछ ही दरमें गौरी एक स्थानमें पहुँची, जहाँ बड़ी सुन्दर  
सुगन्ध कैली हुई थी । उसने देखा, एक दिव्यवसना देवी वृक्षके नीचे  
बैठी है । गौरी उसी ओर चली । उसके समीप पहुँचते ही देवी  
अचानक अदृश्य हो गयी । गौरीने देखा, पतिकी मृत देह पड़ी है ।  
ऐसा लगा मानो अभी कुछ देर पहले देहसे प्राण निकले हैं । वास्तवमें  
बात भी ऐसी ही थी । ब्रह्मचारियोंकी सहायतासे गौरीने विधिवत्  
षतिका दाहकर्म किया । भस्मको नर्मदामें बहाया और फिर स्नान  
करके उन्हें जलाञ्जलि दी । महात्माकी कृपासे गौरीका अन्तःकरण  
मोहशून्य हो चुका था, इससे उसे जरा भी शोक नहीं हुआ । इतना  
विचार जखर हुआ कि मेरे पति जो कहा करते थे कि 'भगवान् जो  
कुछ करते हैं, सब कल्याण ही करते हैं ।' यह सर्वथा सत्य है । मुझ-  
को हटाकर भगवान् ने मेरे पतिको अपना परमधाम दिया और मुझको  
महात्माके पास भेजकर अपूर्व ज्ञान-दान कराया । यह ज्ञान न  
मिलता तो आज पतिका मरण मेरे लिये कितना भयानक दुःखदायी  
होता । सचमुच भगवान् सब कल्याण ही करते हैं । वह यह सोच  
ही रही थी कि एक ब्रह्मचारीने कहा, 'माता ! हमलोग जाते हैं,  
गुरुजीने ये गेहुआ वस्त्र और यह इकतारा दिया है और कहा है कि

गेरुआ धारण कर लो और इकतारा ब्रजा-ब्रजाकर व्यावहारिक जगत्‌में भगवान्‌के गुण गा-गाकर जगत्‌के लोगोंका कल्याण किया करो । अतएव माताजी ! आप इसे लीजिये ।' गौरीने गेरुआ कपड़ा और इकतारा ले लिया । देखते-ही-देखते चारों ब्रह्मचारी आँखोंकी ओश्छल हो गये । गौरीने समझा, मानो इकतारेके रूपमें भगवान्‌ने एक बड़ा साथी भेज दिया है । गौरीके मनमें भगवान्‌के दिव्य गुणोंका स्फुरण हो आया और वह मस्त होकर उनका गान करने लगी । मस्त गौरी चल दी । किधर जा रही है, पता नहीं है । जहाँ पैर सुकते वहाँ ठहर जाती, जो कुछ फल-मूल मिलता खा लेती और जहाँ नींद आती वहाँ सो जाती । भगवान्‌का स्मरण तो नित्य रहता ही । जाप्रत् अवस्थामें इकतारेके साथ गुणगान और कीर्तन भी एकतार चलता ।

पता नहीं कितने दिन बीते—आखिर वह एक नगरमें पहुँची । नगर बहुत ही सजा हुआ था, चारों ओर मङ्गलाचार हो रहे थे । सब लोग आनन्दमग्न थे । गौरी अपने आनन्दमें मस्त थी वह किसी दूसरे ही राज्यमें थी । उसपर नगरके आनन्दका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । लोगोंकी दृष्टिमें वह पगड़ी थी ।

बृद्ध राजाके इकलौते पुत्र उदयराजका कल ही राज्याभिषेक हुआ है । सुयोग्य कुमारको राज्यभार सौंपकर राजा चतुर्थश्रममें प्रवेशकर वनको चले गये हैं । नगरमें राज्याभिषेकका उत्सव है । आज नये राजाका प्रथम दरबार है । नगरके खास-खास लोग दरबारमें उपस्थित होने जा रहे हैं । सारी प्रजामें आनन्द छाया है । नगरके और गाँवोंसे आये हुए लोग इधर-उधर नगरकी सजावट

देखते फिरते हैं, चारों ओर भीड़ लगी है। पगली संन्यासिनी भी अपनी राग अलापती, जिवर मुँह जाता है उधर चली जा रही है। चलते-चलते वह महलके द्वारपर पहुँच गयी। और न जाने क्यों वहाँ खड़ी होकर बड़े ही मधुर स्वरमें भगवान्‌के नाम-गुण गाने लगी। उसके भजनोंने लोगोंको आकर्षित कर लिया—वहाँ भीड़ इकट्ठी हो गयी। भजनकी सुमधुर ध्वनि महलोंमें पहुँची। सुरीली आवाज सुनकर राजमहलकी खियाँ अटारियोंपर चढ़कर भजन सुनने लगीं। संन्यासिनीका परिचय जाननेकी लालसा सभीके मनमें जाग उठी।

राजकुमार दरबारमें जानेकी तैयारी कर रहे थे। एक सेवकने जाकर उनसे कहा—‘महाराज ! महलके सदर दरवाजेपर एक तेज-पुञ्जमयी संन्यासिनी खड़ी ऐसे सुन्दर भजन गा रही हैं कि उन्होंने सबके मनको अपनी ओर खींच लिया है।’ संन्यासिनीका नाम सुनते ही राजकुमारको किसी पूर्वस्मृतिने चौंका दिया और वे जिस हालतमें थे उसी हालतमें महलके दरवाजेकी ओर दौड़े और वहाँ पहुँचकर संन्यासिनीकी ओर भक्तिपूर्ण दृष्टिसे देखा। देखते ही उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे और वे उनके चरणोंमें लिपट गये। राजकुमारके अचानक आकर इस प्रकार चरणोंमें लिपटते समय गैरी सहम गयी, कुछ पीछे हटी; परन्तु दूसरे ही क्षण उसकी स्मृति जाग उठी। उसने ब्रवस उठाकर राजकुमारके मुखकी ओर बड़ी ही सतृष्ण दृष्टिसे देखा। उसकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये। राजकुमारको उसने हृदयसे लगा लिया और बोली—‘मैं क्या यह स्वप्न देख रही हूँ। क्या मेरा ऊदा ही मेरी छातीसे लिपटा है।’ राजकुमारने रोते-रोते कहा—‘माँ ! तेरा ऊदा बहुत ही बड़भागी है,

जो आज उसको इस अवस्थामें माँकी चरणरज प्राप्त हुई । आम रास्तेपर राजकुमार और संन्यासिनीकी इन चेष्टाओंको देखकर और उनकी बातें सुनकर राजकर्मचारी और राज्यके लोग सब चकित रह गये ।

राजकुमार संन्यासिनीको महळोंमें ले गये और उन्हें ऊँचे आसनपर बैठाया । रानीसे कहा—सासके चरणवन्दन करो । मैं मातृहीन आज माँकी गोद पाकर कृतार्थ हो गया और तुम भी सासकी सेवाका सौभाग्य पाकर धन्य होओ ।

राजकुमार गौरीके चरणोंमें बैठ गया । गौरीकी विचित्र दशा है । महात्माके उपदेशसे एक ओर तो वह जगत्को स्वप्नवत् देख रही है; और दूसरी ओर पुराने संस्कार क्षीणरूपसे आ-आकर उसे पुत्रस्नेहमें बाँधना चाहते हैं । वह चुपचाप बैठी है । राजकुमारने आङ्गा दी, दरवार सन्ध्याको होगा । आज माताजीका शुभागमन हुआ है । इससे अभी सारा राजपरिवार इनकी सेवामें रहेगा । दरवार स्थगित हो गया । राजकुमारने माताजीसे कहा—माँ ! तुम बोलती क्यों नहीं ? क्या मुझे भूल गयी ? मैं तो सचमुच ही भूल गया था । तुम्हींने तो परसों रातको आकर मुझे सब बातें स्मरण करायीं । तभीसे मैं प्रतीक्षामें था कि तुम कब आती हो और कब मैं तुम्हारे चरणोंका दर्शनकर कृतार्थ होता हूँ ।

अब गौरीकी जबान खुली । उसने कहा, मैं परसों कब आयी थी तुझे स्मरण कराने और तू मुझे कैसे भूल गया था । पहले तो यह बता, तेरे प्राण कैसे बचे और तू यहाँ कैसे आया ?

राजकुमारने कहा—माँ ! तुझे याद ही होगा कि मुझे घड़ियालने पकड़कर जलमें खींच लिया था । उसके बाद घड़ियाल पानीके अंदरही-अंदर मुझे बहुत दूर ले गया । इतनेमें न मालूम पानीके अंदर

किस जानवरने आकर घड़ियालपर हमला किया कि वह घबरा गया । इसी बीचमें मैं उसके मुँहसे छूट गया । मुझे बहुत ही कम होश था । यद्यपि मैं बहुत नादान था, तथापि पिताजीकी वह बात जो वे वार-वार कहते थे कि 'भगवान् जो कुछ करते हैं सब कल्याण ही करते हैं' मुझे याद थी । उसीसे मुझे कुछ ढाढ़स मिलता था । मैं घड़ियालसे छूटकर एक बार ऊपर आकर झूबने लगा । इतनेमें ही एक नाव मेरे समीप आयी और नाववालोंने मुझे उठाकर नावपर चढ़ा लिया । नावपर आते ही मैं बेहोश हो गया । कई दिनों बाद जब मुझे होश हुआ तो मैंने देखा कि मैं एक बड़े अच्छे महलमें पलँगपर सोया हूँ । बहुत-से सेवक मेरी सेवामें लगे हैं और एक तेजस्वी वृद्ध पुरुष मेरे सिरहानेकी ओर बैठे मेरे मस्तकपर हाथ फेर रहे हैं । मेरी आँखें खुली देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और समीप ही बैठे हुए एक गौरवर्ण वृद्ध संन्यासीसे बोले—'महाराज ! आपका वचन सत्य हो गया । आज ठीक इक्कीसवाँ दिन है । मैं धन्य हो गया । मुझ अपुत्रको पुत्रदान देकर आपने कृतार्थ किया ।' संन्यासी मुसकरा दिये । फिर संन्यासीने मेरा हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—'बेटा ! बताओ, तुम किस जातिके हो, तुम्हारा क्या नाम है ? तुम्हारे माता-पिता और गाँवका क्या नाम है ?' माँ ! पता नहीं क्यों, मेरी सारी स्मृति उस समय नष्ट हो गयी थी । मुझे सिर्फ इतना याद था कि 'मैं क्षत्रिय हूँ और मेरा नाम ऊदा है । पहले कहाँ था, कैसे यहाँ पहुँचा, माँ-बाप कौन थे ? यह सब मैं विल्कुल ही भूल गया ।' मैंने कहा, 'महाराज ! मुझे मालूम नहीं, मेरे पिता-माता कौन थे और मैं किस गाँवमें जन्मा था । मुझे इतना ही मालूम है कि मैं क्षत्रिय हूँ और मेरा नाम ऊदा है ।' मेरी बात सुनकर संन्यासी महाराज उक्त वृद्ध पुरुषकी ओर देखकर

हँसने लगे । वृद्ध पुरुषने कहा—‘महाराज ! आपका कहा कुछ भी अन्यथा नहीं हो सकता । मैं निहाल हो गया । मैं समझता हूँ—राज्याभिषेकके पहले दिनतक इसे पूर्वस्मृति नहीं होगी, यह बहुत अच्छा हुआ ।’ संन्यासी महाराज मुझसे बोले—‘बेटा ! तुम्हारा नाम आजसे उदयराज हुआ । ये महाराज चन्द्रसेन तुम्हारे पिता हैं । तुम्हारी माता महारानी कमलादेवी खर्गवासिनी हो चुकी हैं । अब तुम्हीं इस राज्यके मालिक हो । महाराजकी देख-रेखमें खब्र विद्याध्ययन करो और समयपर राज्यशासनका भार लेकर प्रजाको सुखी करो । तुम्हारी भगवान्‌में रुचि होगी । मेरा यही तुमको आशीर्वाद है ।’ इतना कहकर संन्यासी महाराज उठे और वृद्ध पुरुषसे यह कहकर कि ‘महाराज ! मेरा वचन पूरा हो गया, अब मैं जाता हूँ ।’ चल दिये । महाराज चन्द्रसेनने उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद पाकर अपनेको धन्य माना ।

बस, तबसे मैं यहीं सुखपूर्वक रहा । मेरी सेत्राके लिये दास-दासियाँ, देख-रेखके लिये सरदार और पढ़ाईके लिये सुयोग्य गुरुओंकी नियुक्ति हो गयी । दो साल हुए विजयनगरके महाराजकी पुत्रीसे मेरा विवाह हुआ—ये तुम्हारे चरणोंमें बैठी हैं । कल मेरे राज्याभिषेकका और महाराजके संन्यासग्रहणका मुहूर्त था । इसलिये परसों मैंने उपवास किया था । रातको जागरण था । रातके चौथे पहर मुझे झपकी-सी आ गयी । मैं देखता हूँ—तुम इसी वेषमें मेरे सामने खड़ी हो । मेरे न पहचाननेपर तुमने मुझे खींचकर अपनी गोदमें ले लिया और पुरानी सब बातें सुनायीं । बस, तभीसे मुझे सब स्मरण हो आया । तबतक मैं सब बातें, यहाँतक कि घड़ियालसे पकड़े जानेतककी बात भूल गया था । मैंने जागकर देखा तुम नहीं हो,

परन्तु स्वप्नकी स्मृति ज्यों-की-त्यों वनी रही । तभीसे मैं तुम्हारे दर्शनके लिये व्याकुल था । कल राज्याभिषेकका दिन था, परन्तु मेरा मन तुम्हारी ओर लगा था । मुझे कुछ उदास देखकर महाराजने मुझसे पूछा । मेरे स्वप्नका हाल सुनानेपर उन्होंने कहा—‘बेटा ! हो सकता है, तुम्हारी माताजीने ही तुम्हें दर्शन दिये हों ।’ बात यह है, मैं सन्तानहीन था । महारानीका स्वर्गवास हो चुका था । पुनः विवाह करनेकी मेरी इच्छा नहीं थी, क्योंकि मेरा मन पहलेसे ही कुछ विरक्त-सा था । रानीके मरनेपर और भी विरक्त हो गया । मैं राज्य छोड़कर संन्यासग्रहणका विचार करने लगा । तब एक दिन अकस्मात् मेरे पिताजीके गुरु महाराज, जो बड़े सिद्ध योगी थे, अचानक पधारे । उन्होंने कहा—‘चन्द्रसेन ! अभी तुम्हारे संन्यास-का समय नहीं आया है । तुम्हारा कर्तव्य अभी पूरा नहीं हुआ है । चलो मेरे साथ वनमें, वहाँ एक अनुष्ठान किया जायगा । भगवान् तुम्हें एक सुयोग्य पुत्र भेज देंगे । वह अपने पहले घर और माता-पिताको राज्याभिषेकके दिनतक भूला रहेगा, जिससे इस घरमें इसकी ममता हो जायगी । वह बालक आगे चलकर बड़ा ही बुद्धिमान्, विद्वान्, भगवद्गत्त और सदाचारी होगा । उससे तुम्हारा कुछ उज्ज्वल होगा और तुम्हारी सद्गति होगी । उसे पाल-पोसकर, सब तरहसे योग्य बनाकर और राज्यभार सौंपकर तुम उसी दिन संन्यास ले लेना ।’ महात्माकी बात सुनकर मैं उनके साथ वनमें गया । वहाँ महात्माने अनुष्ठान किया । अनुष्ठानकी समाप्तिके दिन हमलोग नर्मदाजीमें नहाकर नावपर सवार हुए थे और मछलियोंको अन्न खिला रहे थे । इसी समय तुम दूबते दिखायी दिये और

महात्मा के संकेत से तुम निकाल लिये गये । तुम जल से निकलते ही बेहोश हो गये थे । तुम्हारे पैर में धाव था । इक्कीस दिन तक तुम बेहोश रहे, इतने में धाव का इलाज हो गया । धाव सूख गया और तुम होश में आ गये । आज तुम्हारे राज्याभिषेक का दिन है । तुम्हें पूर्वस्मृति कराने के लिये ही सम्भवतः भगवान् के विधान से तुम्हें संन्यासिनी के रूप में अपनी माता के दर्शन हुए हों । तुम उदास न होओ । आनन्दपूर्वक सब काम सम्पन्न करो ।

महाराज के वचनों से मुझे शान्ति मिली, परन्तु मन तुम्हारी ओर लगा रहा । आज तुम्हारे दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया । माँ ! बताओ, तुम इस वेश में क्यों हो ? पिताजी कहाँ हैं ? तुम-लोगों को बड़ा ही कष्ट हुआ होगा । मैं अभाग हूँ जो तुम्हारी सेवा से ब्रह्मित रहा । माँ ! माँ ! मुझे गोद में ले लो । इतना कहकर राजकुमार माता की गोद में गिर गये । उनकी आँखों से आँसू की धारा वह चली ।

गौरी ज्ञान प्राप्त कर चुकी थी; परन्तु आज उसके हृदय में भी स्नेहने जोर मारा । बोधने वाँध तो नहीं दूटने दिया, परन्तु आँखें छलछला आयीं । माता ने बिछुड़े पूतको पाकर उसे हृदय से लगा लिया और अबतक की सारी कथा विस्तारपूर्वक कह सुनायी ।

पिता गिरवर का मरण सुनकर राजकुमार को बड़ा दुःख हुआ, परन्तु माता के समझाने पर उनका मन शान्त हो गया ।

बात-ही-बात में सन्ध्या होने को आयी । वधू के बड़ा आग्रह करने पर माता जीने उठकर स्नान-भोजनादि किया । सन्ध्या को दरबार का काम हुआ । रात को फिर माता-पुत्र में बातें होती रहीं ।

गौरीने पुत्रको भगवद्गतिका बड़ा ही सुन्दर उपदेश देकर असर्ली मातृस्नेहका परिचय दिया । माताके उपदेशका राजकुमारपर बहुत ही प्रभाव पड़ा । गौरीने कहा—‘वेण ! तुम्हें देखनेकी मेरी वासना पूरी हो गयी, अब मुझे जाने दो ।’ परन्तु उदयराजने किसी प्रकार भी माताको जानेकी अनुमति नहीं दी । अन्तमें यह निश्चय हुआ कि नगरके बाहर गौरीके लिये कुटिया बना दी जाय । बाहर कुटिया बनवा दी गयी । गौरी उसीमें रहने लगी । सेवाका समुचित प्रबन्ध हो गया । पुत्र उदयराज और पुत्रवधू रोज माताके दर्शनार्थ जाते और उनकी सेवासे अपनेको कृतार्थ समझते । माता उन्हें सदा भगवद्गतिका ही उपदेश करती । एक दिन माँने कहा—‘वेण ! भगवान् जो कुछ करते हैं सब कल्याण ही करते हैं । इस मन्त्रको न भूलना और सदा प्रसन्न रहना । देखो ! हमलोगोंका किस प्रकार भगवान्ने कल्याण किया ।’

गौरी ज्ञानसम्पन्न तो थी ही, धीरे-धीरे उसका भगवत्प्रेम भी प्राकाष्ठाको पहुँच गया । भगवान्‌ने कृपा करके प्रेमवश हो उमे अपने साक्षात् दर्शन दिये । तबसे गौरी प्रेममें बेसुध हो गयी और दर्शनके तीसरे ही दिन भगवान्‌के दर्शन करते-करते ही शरीर त्यागकर भगवान्‌के परमवाममें चली गयी ।

पुत्र उदयराज अपनी पत्नीसहित भगवान्‌का भजन करते हुए राज्यशासन करने लगे । अन्तमें भगवान्‌की सच्ची भक्तिको पाकर वे भी कृतार्थ हो गये ।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

भीहरि:

# सचित्र, संक्षित भक्त-चरित-मालाकी पुस्तकें

( सम्पादक—भ्रीहनुसानप्रसाद पोद्धार )

मूल्य

भक्त बालक—पृष्ठ ७६, सचित्र, इसमें गोविन्द, मोहन, घना, न० पै०		
चन्द्रहास और सुधन्वाकी कथाएँ हैं	...	३१
भक्त नारी—पृष्ठ ६८, एक तिरंगा तथा पाँच सादे चित्र, इसमें शबरी, मीराबाई, करमैतीबाई, जनाबाई और रवियाकी कथाएँ हैं	...	३१
भक्त-पञ्चरत्न—पृष्ठ ८८, एक तिरंगा तथा एक सादा चित्र, इसमें रघुनाथ, दामोदर, गोपाल, शान्तोदा और नीलम्बरदासकी कथाएँ हैं	...	३१
आदर्श भक्त—पृष्ठ ९८, एक रंगीन तथा ग्यारह सादे चित्र, इसमें शिवि, रन्तिदेव, अम्बरीष, भीष्म, अर्जुन, सुदामा और चक्रिकी कथाएँ हैं	...	३१
भक्त-चन्द्रिका—पृष्ठ ८८, एक तिरंगा चित्र, इसमें साज्वी सखूबाई, महाभागवत श्रीच्योतिपत्त, भक्तवर विष्णुलदासजी, दीनबन्धुदास, भक्त नारायणदास और बन्धु महान्तिकी सुन्दर गाथाएँ हैं	...	३१
भक्त-सप्तरत्न—पृष्ठ ८८, सचित्र, इसमें दामाजी पत्त, मणिदास माली, कूबा कुम्हार, परमेष्ठी दर्जी, रघु केवट, रामदास चमार और सालबेगकी कथाएँ हैं	...	३१
भक्त-कुसुम—पृष्ठ ८४, सचित्र, इसमें जगन्नाथदास, हिमतदास, बालीग्रामदास, दक्षिणी तुलसीदास, गोविन्ददास और हरिनारायणकी कथाएँ हैं	...	३१
प्रेमी भक्त—पृष्ठ ८८, एक तिरंगा चित्र, इसमें विष्वमङ्गल, जयदेव, रूप-सनातन, हरिदास और रघुनाथदासकी कथाएँ हैं	...	३१

मिलनेका पता  
गीतांग्रेस, पो० गीतांग्रेस ( गोरखपुर )